श्री जिनदत्तसूरि सेवासंघ प्रकाशन पुष्पाङ्क २१

दादा गुरुचरित्र

[चारों दादाजी का संक्षिप्त जीवन]

प्रतापमल साठया
प्र० मन्त्री श्री जिनदत्तसूरि सेवा संघ
बम्बई : मद्रास

द्रव्य सहायक
श्री रूपचन्द छबीलदास चेरिटेबल ट्रस्ट
मद्रास

प्रकाशक :
प्रतापमल सेठिया
प्रधान मन्त्री
श्रीजिनदत्तसूरि सेवा संघ
बम्बई : मद्रास

मुद्रक :
प्रतापसिंह लूणिया
जॉब प्रिंटिंग प्रेस
ब्रह्मपुरी, अजमेर

प्रथमावृत्ति :
१५०१
वि० सं० २०१९

निवेदन

अज्ञानतिमिरान्धस्य, ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

मानवीय जीवन की सार्थकता में वस्तुतः जितना गुरु का महत्त्व है, उतना किसी अन्य का नहीं? प्रामाणिक तथ्यों तथा अनुभूतियों के आधार पर तो यहां तक कहा जाता है कि गुरु ही मुक्ति का कारण है। इसलिये कि उसके बिना सद्ज्ञान की प्राप्ति होना नितान्त असम्भव है एवं सद्ज्ञान के बिना मुक्ति भी सर्वथा अप्राप्य ही रहती है। अतः प्रत्येक श्रद्धालु महानुभाव के मानस में गुरु के प्रति असीम श्रद्धा होना अनिवार्य है। यह तभी हो सकता है जब हम उनके आदर्श जीवन का अध्ययन करें।

पुण्यभूमि भारत में कई महापुरुष एवं गुरुजन होगये हैं, जिनके जीवनगत आदर्शों पर चलकर हमारे पूर्वजनों ने अपना जीवन सफल बनाया; अस्तु।

हमारे दादागुरुओं के जीवन चरित्र भी इतने ही महान् एवं प्रभावशाली हैं कि जिनके द्वारा हम अपना कल्याण कर सकते हैं।

यद्यपि श्रीयुत अगरचन्दजी नाहटा ने युगप्रधान दादा श्री जिनदत्तसूरिजी आदि गुरुजनों के शोधपूर्ण जीवन चरित्र लिखे हैं, परन्तु वे विस्तृत हैं। संक्षेप में इन चरित्रों की आवश्यकता का कई दिनों से अनुभव हो रहा था एवं कतिपय श्रद्धालु महानुभावों का भी आग्रह था कि दादागुरुओं के संक्षिप्त जीवन चरित्र प्रकाशित किये जांय! अतः श्री जिनदत्तसूरि सेवा संघ की ओर

से चारों दादाजी का संयुक्त संक्षिप्त जीवन चरित्र प्रकाशित करने का निश्चय किया गया।

उक्त निश्चय के फलस्वरूप प्रस्तुत पुस्तिका का प्रकाशन करते हुए हमें प्रसन्नता का अनुभव होरहा है।

इस अवसर पर मैं श्री अगरचन्दजी नाहटा को धन्यवाद देना अपना कर्तव्य समझता हूँ, जिनके लिखे हुए दादागुरुओं के जीवन-चरित्रों से हमें पर्याप्त सहायता मिली है। इसी प्रकार इसके प्रकाशनार्थ द्रव्यसहायता प्रदान करने वाले श्री रूपचन्द छबीलदास चैरिटेबल ट्रस्ट मद्रास का भी मैं आभार प्रदर्शन करता हूँ जिनके द्रव्यसहयोग से इस पुस्तिका का प्रकाशन हुआ।

आशा है श्रद्धालु गुरुभक्त इस पुस्तिका का पठन कर आत्म-कल्याण की ओर प्रवृत्त होंगे।

आषाढ़ शु० एकादशी
वि० सं० २०१६

—प्रतापमल सेठिया
प्र० मन्त्री श्री जिनदत्तसूरिजी सेवा संघ

आभार

इस पुस्तक में प्रकाशित प्रायः समस्त चित्रों के ब्लाक्स हमें पूज्य मुनि श्री कान्तिसागरजी तथा दर्शनसागरजी महाराज के सौजन्य से प्राप्त हुए हैं, अतः सेवासंघ उनका आभारी है।

—मन्त्री

श्री जिनदत्त सूरिजी के दादा गुरु नव अंगी टीकाकार
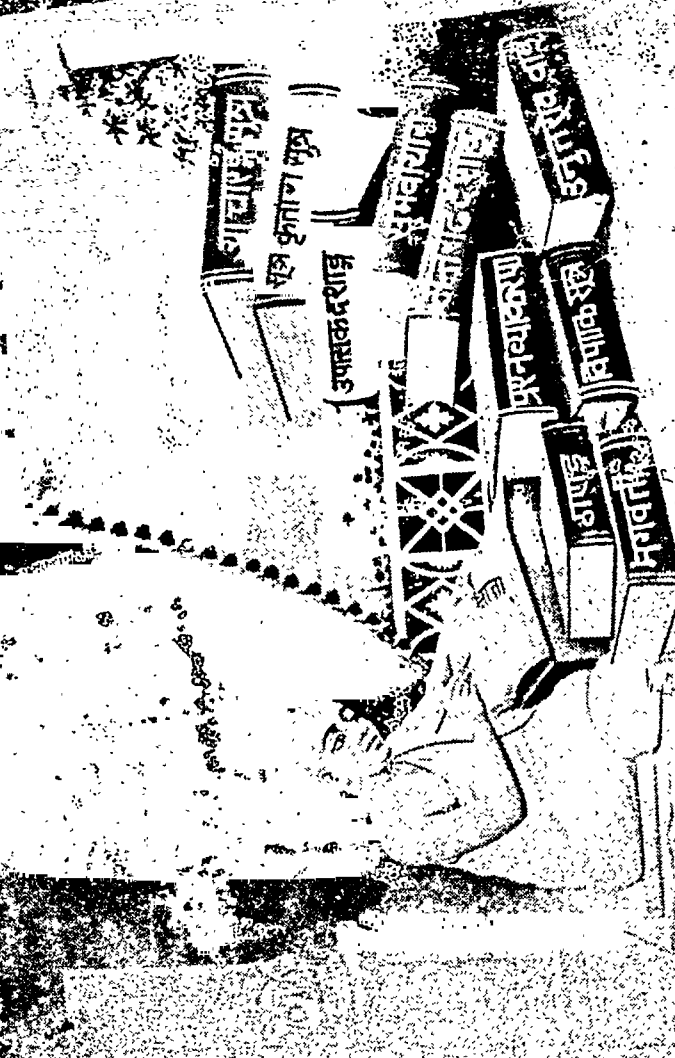
श्री गुरुदेवाय नमः

दादा गुरुचरित्र

युगप्रधान दादा श्री जिनदत्तसूरिजी

दासानुदासा इव सर्वदेवा, यदीयपादाब्जतले लुठन्ति।
मरुस्थली कल्पतरुः स जीयात्, युगप्रधानो जिनदत्तसूरिः ॥

युगप्रधान दादा श्री जिनदत्तसूरिजी अपनी तेजोमयी प्रतिभा, उत्कृष्टसाधना एवं लोकोत्तर प्रभाव के कारण जैन-जगत् में बड़े दादाजी के नाम से सुप्रसिद्ध जैनाचार्य हुए हैं।

इनका जन्म गुजरात प्रान्त के धवलक (धोलका) नगर में हुँबड़ज्ञातीय श्री वाछिगजी के यहाँ वि० सं० ११३२ में हुआ था। इनकी माता का नाम बाहड़देवी था। बाहड़देवी का यह नवजात शिशु (चरित्रनायक) प्रारम्भ से ही अपनी विलक्षणता के फलस्वरूप जनमन के आकर्षण का केन्द्र बनगया था। जब इस बालक ने शिशु-अवस्था पारकर किशोरवय में प्रवेश किया, तब एक दिन वहाँ चातुर्मास में विराजमान विदुषी आर्याओं के प्रवचनामृत का पान करने के हेतु धर्मपरायणा अपनी माँ के साथ वह भी गया। बाहड़देवी आर्याओं के उपदेश से विशेष प्रभावित हुई एवं धार्मिकचर्या के रूप में वह अपने इस पुत्ररत्न को साथ लेकर प्रतिदिन प्रवचन सुनने जाने लगी।

एक समय प्रवचन समाप्त करने के पश्चात् आर्याजी नें बाहड़देवी के इस शान्त, कान्त एवं प्रतिभाशाली बालक को गम्भीरतापूर्वक देखा तो वे उसके अलौकिक लक्षणों को देखकर आश्चर्य में पड़गई एवं मन ही मन विचार करने लगीं कि "यह

बालक महान् भाग्यशाली, परमप्रतापी एवं धार्मिक आचार्य के रूप में समाज का कल्याण करनेवाला होगा। निस्सन्देह इसका जन्म सफल है।" आर्याजी की श्रद्धा उस बालक के प्रति दिन प्रतिदिन बढ़ती गई और वे अधिक निष्ठा के साथ उन दोनों को उपदेश देने लगी जिसके फलस्वरूप बालक का निर्मल हृदय उस वैराग्यमयी वाणी से भर गया।

विदुषी आर्याजी श्री जिनेश्वरसूरिजी के शिष्य श्री धर्मदेवजी उपाध्याय की आज्ञानुवर्तिनी शिष्या थीं। उन्होंने बाहड़देवी की स्वीकृति लेकर उपाध्यायजी के समीप इस बालक के प्रभावोत्पादक गुणों का संवाद भेजा। श्री धर्मदेवजी भी उस संवाद को प्राप्त कर तत्काल ही वहां पधारे और जब उस बालक को देखा तो वे भी विस्मित हुए बिना नहीं रहे। उन्होंने सुकुमारवय वाले प्रभावशाली इस बालक को दीक्षित करने के सम्बन्ध में इसकी मां से पूछा "क्या तुम अपना यह बालक समाज को दे सकती हो? हम इसको दीक्षित करेंगे और यह सम्पूर्ण संसार का कल्याण करते हुए अपने जीवन को सफल बनावेगा।"

बाहड़देवी भाग्यशाली पुत्र की भाग्यशालिनी माँ थी। उसने तत्काल ही इसके लिये स्वीकृति प्रदान कर दी। उस समय बालक की अवस्था ९ वर्ष की थी। श्री उपाध्यायजी ने उसीसमय (संवत् ११४१ में) शुभ मुहूर्त्त देखकर बालक को दीक्षित करलिया एवं उसका नाम मुनिसोमचन्द्र रखा।

इस प्रकार उस समय की विदुषी साध्वियों की कुशाग्र मेधा से परीक्षित यह बालक, जो दीक्षित होकर आज सोमचन्द्र मुनि बना, आगे चलकर यही युगप्रधान दादा जिनदत्तसूरि के नाम से प्रसिद्ध हुआ। निस्सन्देह यह उन आर्याजी की विचक्षण प्रतिभा

कई ग्रन्थों की टीका करते हुए युग-प्रधान दादा श्री जिनदत्तसूरिजी।

का ही सुफल है कि उन्होंने बाहड़देवी के उस बालक में अलौकिक गुणों के दर्शन किये।

वैसे सोमचन्द्रमुनि ने श्रावकोचित सूत्रादि तो पूर्व में ही पढ़लिये थे, किन्तु अब उपाध्यायजी के निर्देशानुसार श्री सर्वदेव गणि के तत्त्वावधान में साधुप्रतिक्रमण आदि पढ़ना प्रारम्भ किया। इसके पश्चात् लक्षणपञ्जकादि विविध शास्त्रों के अध्ययनार्थ आप ७ वर्ष तक पाटन रहे। इस अवधि में आपने अपनी विलक्षण प्रतिभा एवं अलौकिक पाण्डित्य के कारण आशातीत ख्याति तथा सम्मान प्राप्त किया।

आपकी बड़ी दीक्षा आचार्य श्री अशोकचन्द्रजी के कर कमलों से हुई। श्री हरिसिंह भद्राचार्यजी एवं श्री देवभद्राचार्यजी जैसे आचार्य आपकी विद्वत्ता पर मुग्ध रहते थे। अल्पवय में ही आपने सिद्धान्तादि विशिष्ट ज्ञान एवं पाण्डित्य इस प्रकार प्राप्त कर लिया था कि आपकी विद्वत्ता पर मुग्ध हो स्तम्भन पार्श्वनाथ तीर्थ के प्रगटकर्ता नवअङ्गी टीकाकार खरतरगच्छाचार्य श्री अभयदेवसूरीश्वरजी के शिष्य श्री जिनवल्लभसूरिजी ने अपने स्वर्गवास के पूर्व श्री देवभद्रसूरिजी को यह संकेत कर दिया था कि "मेरे पश्चात् मेरे स्थान पर सोमचन्द्र को आचार्य पद देना।" फलस्वरूप तदनुसार आप ही के द्वारा निर्धारित एवं निर्दिष्ट शुभमुहूर्त में संवत् ११६९ वैशाख कृष्ण ६ शनिवार के दिन सन्ध्या के समय चित्तौड़ में भव्य समारोह के साथ आपको आचार्य पद से विभूषित कर श्री जिनदत्तसूरि के नाम से प्रसिद्ध किया गया। सूरिपद ग्रहण करने के पश्चात् आपने कई ग्रामों तथा नगरों में विहार कर धर्म प्रचार किया। आपके उपदेशों से प्रभावित होकर कई स्थानों पर जिनमन्दिरों का निर्माण कार्य भी हुआ। इसी प्रसंग में एक समय अजमेर के प्रमुखश्रावकों

द्वारा निवेदन करने पर अजमेर के संस्थापक महाराजा जयदेव के सुपुत्र श्री अर्णोराज ने भी आपके दर्शनों से प्रभावित होकर धर्म स्थान एवं निवास स्थान बनवाने के लिये जैन समाज को भूमि दी।

आचार्य श्री जिनदत्तसूरिजी धर्मोपदेश के अतिरिक्त साधना में भी निरंतर लीन रहते थे। साधना की इन घड़ियों में आपने कई ऐसे चमत्कार पूर्ण कार्य किये जिनके द्वारा सभी विस्मित हो जाते थे।

पूर्वकाल में महान् प्रभावी श्री वज्रस्वामी ने अनेक प्रकार की विद्याओं से युक्त प्राचीन ग्रन्थ का निर्माण कर सुयोग्य एवं सत्पात्र शिष्य के अभाव के कारण उस ग्रन्थ को चित्तौड़गढ़ में निर्मित वज्रस्तम्भ में सुरक्षित रूप से रख दिया था। पूर्व परम्परानुसार कई साधनाशील आचार्यों एवं विद्वानों ने उसकी प्राप्ति के लिये प्रयास किया, किन्तु वे असफल रहे। इसके पश्चात् श्री जिनदत्तसूरिजी ने अपने योग बल से वज्रस्तम्भ में सुरक्षित उस ग्रन्थरत्न को प्राप्त कर लिया, जिसके फलस्वरूप आपको जिनशासन के अष्ट प्रभाविकों में से सप्तम प्रभाविक सिद्धि की प्राप्ति हुई। जब आप इसकी साधना करते हुए पंजाब प्रान्त की पंच नदी के मध्य आसन लगाकर ध्यान मग्न थे उस समय पाँचों नदियों के अधिष्ठायक पीर आपको विचलित करने की दृष्टि से उपद्रव करने लगे किन्तु आपकी अडिग साधना से वे स्वयं ही आज्ञाकारी सेवक के रूप में आपके समक्ष हाथ जोड़कर खड़े हो गये। इसी प्रकार बावन वीरों को भी आपने वशमें कर अद्भुत सफलता प्राप्त की।

एक समय विक्रमपुर में भूतप्रेतादि तथा महामारी ादि के रोग से जनता अत्यन्त दुःखी थी। चारों ओर हाहाकार मचग्र

प्रथम दादाने चित्तोड नयरे . वज्र स्थम्बे मंदिरों ॥
मंत्र पोथी ग्रही निज शक्ते . जीते बावन वीरों ॥
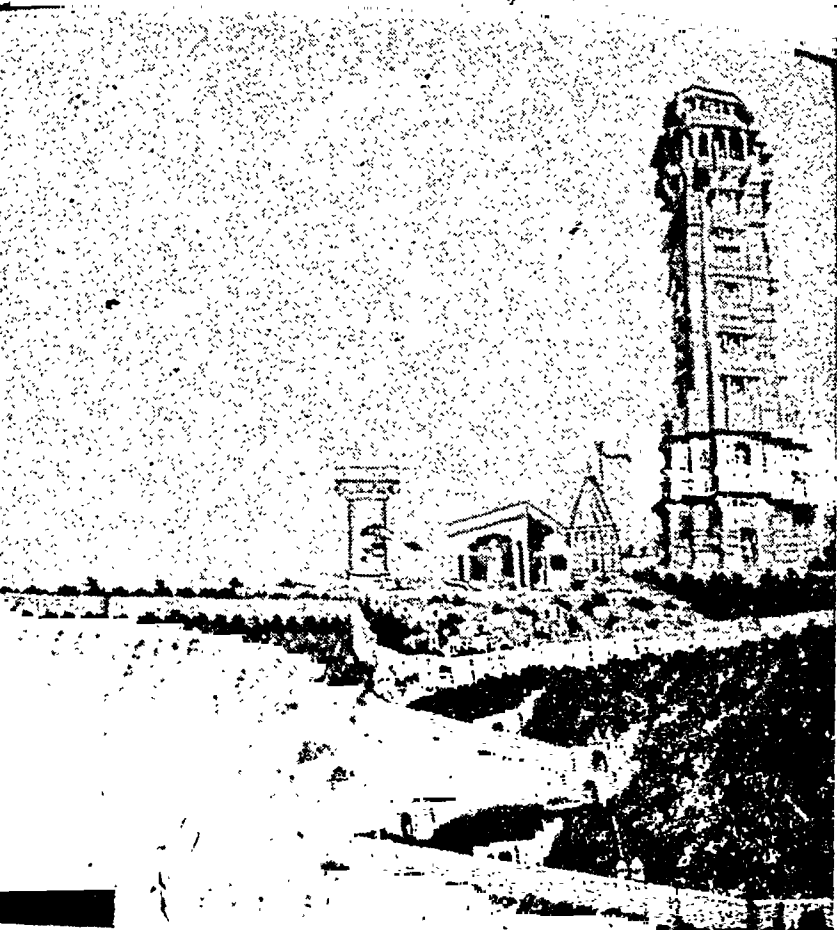
चित्तौड़ के वज्रस्तम्भ में सुरक्षित ग्रन्थरत्न को गुरुदेव ने प्राप्त करलिया
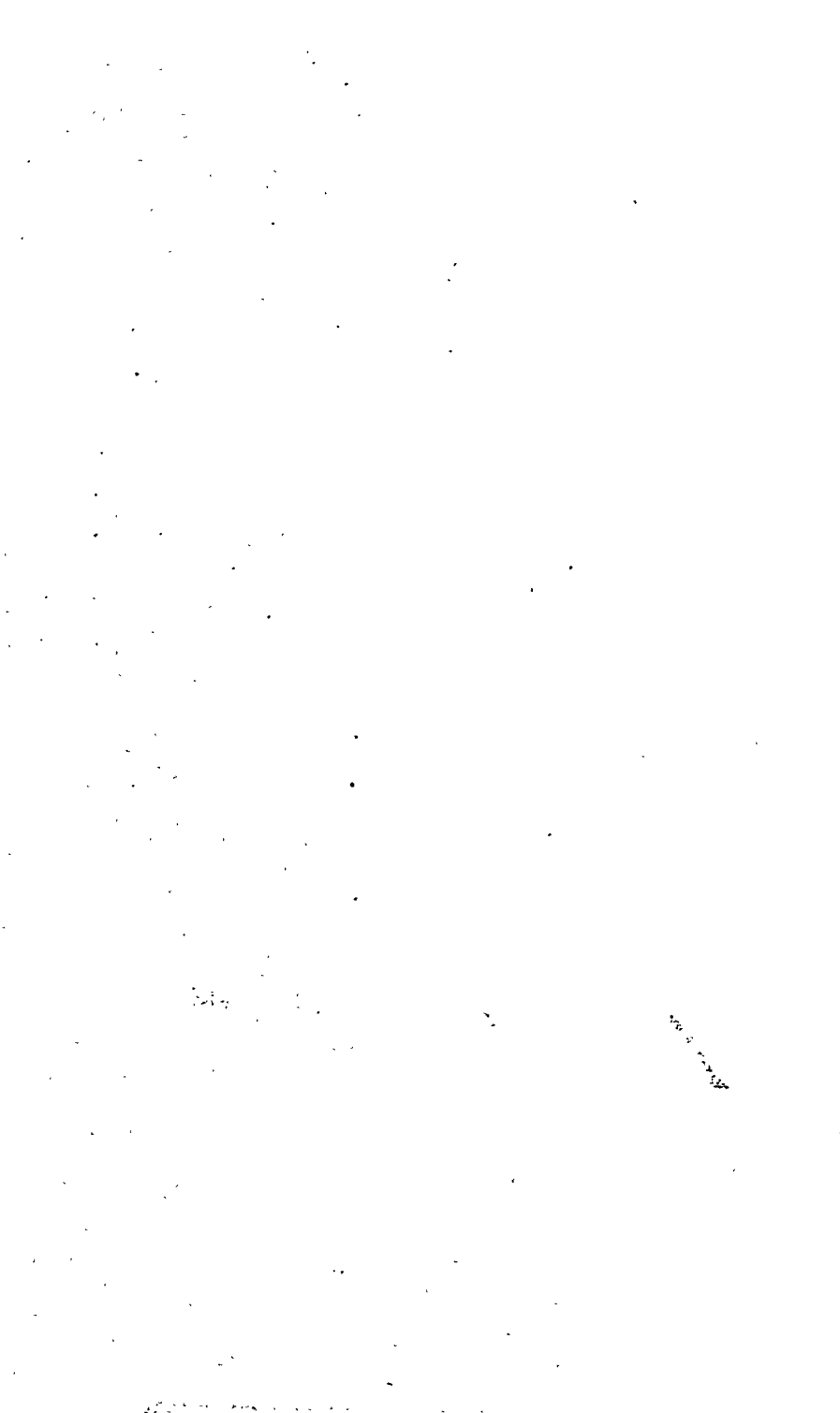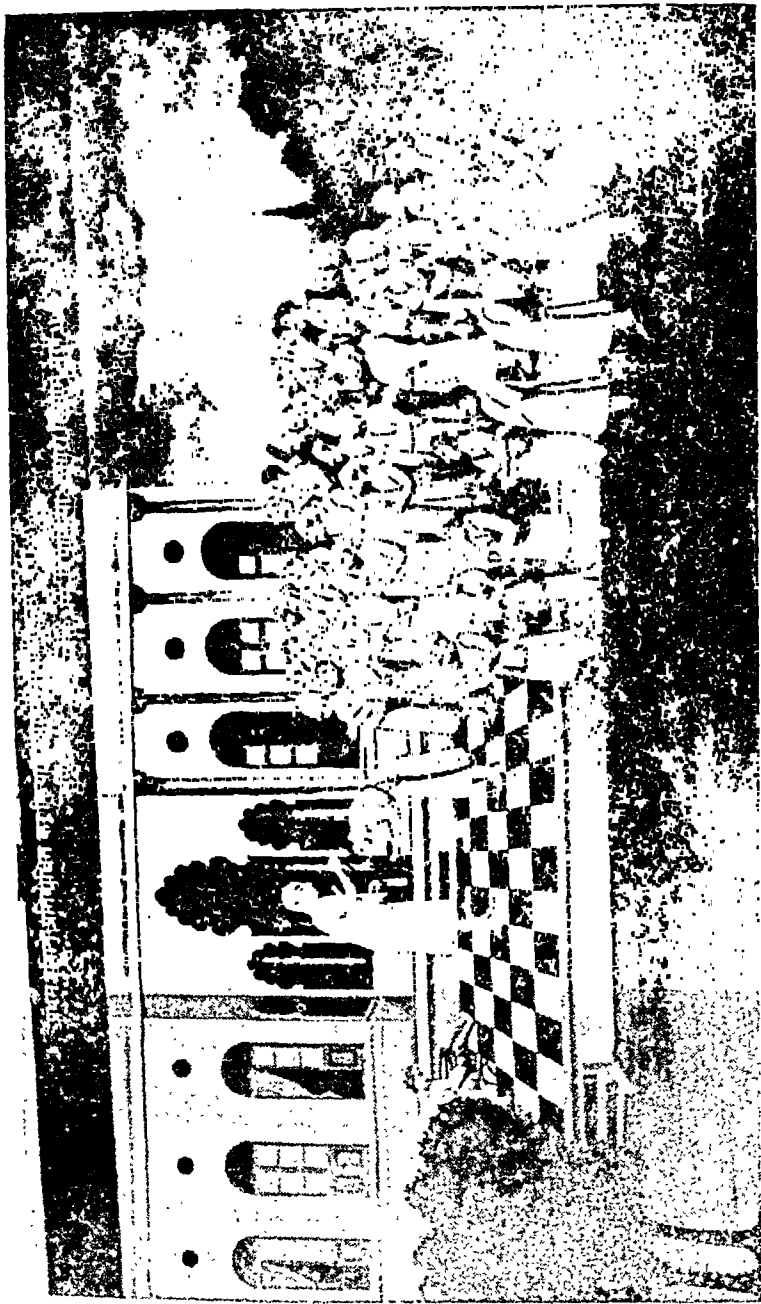
लाखों नरनारियों को जैन धर्म में दीक्षित करते हुए दादा गुरु श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज

जोगनीयां चौसट उजैनि व्यारवाने । प्रथम दादा गुरु छलनेकु आ[illegible]
खिली गई तब शीश नमावे । वर [illegible] स मुक [illegible]

दादागुरु श्री जिनदत्तसूरिजी म० ने, श्राविकाओं का रूप बनाकर छलने के लिये आई हुई ६४ योगिनियो को व्याख्यान के पश्चात् स्तम्भित कर दिया ।

रहा था। वहाँ की जनता के लिये इस उपद्रव की रक्षा का कोई भी साधन दृग्गत नहीं हो रहा था। ऐसे समय में आपने वहाँ पधार कर अपने तपोबल से उपद्रव को शान्त करते हुए वहाँ की जनता को दुःख से उन्मुक्त किया। फलस्वरूप कई जैनेतर आपके शिष्य होगये एवं ५०० शिष्य तथा ७०० शिष्याओं ने प्रव्रज्या ग्रहण करली। इस प्रकार आपके श्रावकों की संख्या बढ़ते बढ़ते एक लाख तीस हजार होगई-एवं आपने उनके लिये ५७ गोत्रों की स्थापना की।

एक समय श्री सूरिजी महाराज ने उज्जयिनी में साढ़े तीन करोड मायाबीज (ह्रींकार) का जप करना प्रारम्भ किया तो उनको अपनी इस क्रिया से विचलित करने एवं छलने के लिये ६४ योगिनियाँ आपके व्याख्यान में आईं। आपने ज्ञानबल से यह बात पहिले ही जानलीथी। अतः व्याख्यान में श्रावकों के द्वारा उनके बैठने की व्यवस्था पृथक् ही यह कहकर करवादी कि "आज व्याख्यान में कुछ विशिष्ट श्राविकाएँ आवेगीं, अतः उनके बैठने की व्यवस्था पृथक् करदेना।" तदनुसार व्याख्यान के समय ६४ योगिनियां छद्मवेश में श्राविकाओं का रूप बनाकर आईं एवं निर्दिष्ट स्थान पर जाकर बैठ गईं। सूरिजी ने अपने योगबल से इनको वहीं स्तम्भित करदिया। फलस्वरूप व्याख्यान की समाप्ति के पश्चात् सभी श्रोतागण वन्दना कर चलेगये, किन्तु ये नवीन श्राविकाएँ यत्नपूर्वक चेष्टा करने पर भी न जासकीं एवं सब कुछ समझ लेने के पश्चात् लज्जित होकर आचार्यश्री से क्षमायाचना पूर्वक कहने लगीं कि "हमतो आपको छलने आईं थीं, परन्तु आपके तपोबल से हम स्वयं ही छली गईं।" इस प्रकार वे क्षमायाचना कर भविष्य में धर्म प्रचार के प्रत्येक कार्य में साहाय्य का वचन दे, अपने स्थान पर लौट गईं।

सूरिजी के समय में प्रत्येक गच्छ वाले अपने अपने गच्छनायक आचार्यों को युगप्रधान कहते थे। ऐसी स्थिति में यह निर्णय नहीं हो पाता था कि वास्तव में युगप्रधान कौन है? इसका समुचित समाधान करने के हेतु परमार्हत् सुश्रावक नागदेव ने उज्जयन्त (गिरनार) शिखर पर तपश्चर्या प्रारम्भ करते हुए तीन दिन तक उपवास किये। उसकी इस तपस्या से प्रसन्न हो अम्बिका देवी ने प्रगट होकर उसके हाथ में प्रशस्ति रूप युग प्रधान का नाम लिख दिया और कहा कि—"जो इन अक्षरों को पढ़ लेगा उसी को तू 'युगप्रधान' जानना।"

नागदेव अम्बिकादेवी द्वारा लिखे गये उन अक्षरों को पढ़ाने के लिये देश देशान्तरों का भ्रमण करते हुए कई आचार्यों के समीप गया, किन्तु कहीं सफलता नहीं मिली। अन्त में वह पाटण गया, जहां श्रीजिनदत्तसूरिजी विराजते थे। नागदेव ने अपना वह हाथ आचार्यश्री के सम्मुख रखते हुए निवेदन किया कि—"आचार्यदेव! कृपया यह बताने का अनुग्रह करें कि इसमें क्या लिखा है?" आचार्यश्री ने उस पर अपनी ही प्रशंसा देखकर स्वयं न पढ़ते हुए वासक्षेप डाल दिया, जिससे अक्षर स्पष्ट रूप से प्रगट हो गये एवं अपने शिष्य की ओर संकेत करते हुए कहा कि—वह पढ़ देगा। इसके पश्चात् उनके शिष्य ने सबके सामने उत्सुकता के साथ नागदेव के हाथ पर लिखी हुई उस गुरुस्तुति को पढ़कर इस प्रकार सुनाया:—

"दासानुदासा इव सर्वदेवा, यदीय पादाब्जतले लुठन्ति।
मरुस्थली कल्पतरुः स जीयात्, युगप्रधानो जिनदत्तसूरिः॥

—जिनके चरणकमलों में समस्त देव दासानुदास के समान लोटते हैं एवं जो मरुस्थल में कल्पवृक्ष के समान सबकी मनो-

प्रधान पद के समाधान के लिये नागदेव ने गिरनार शिखर पर तपस्या की।
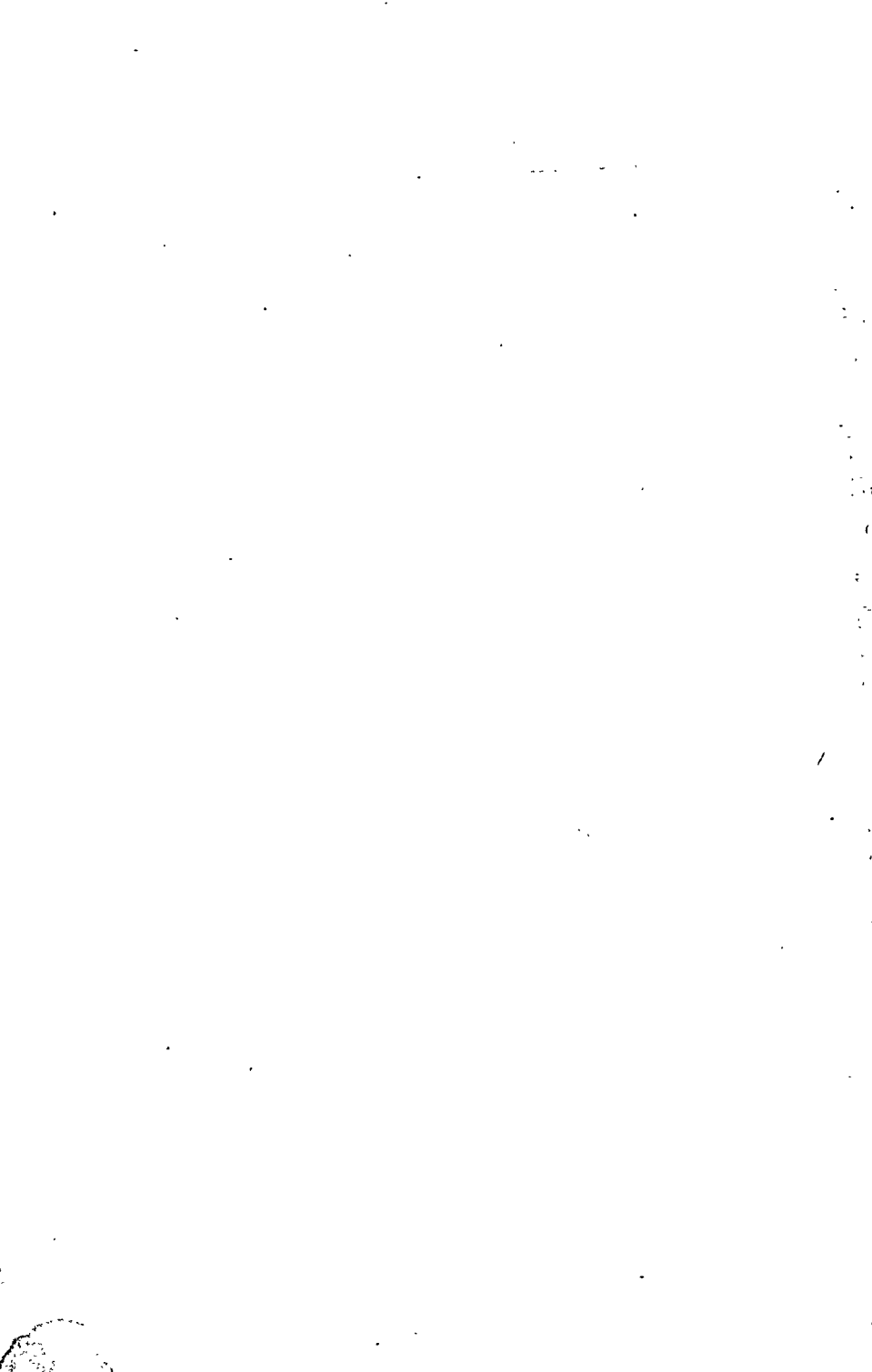
अम्बिका देवी द्वारा नागदेव के हाथ पर लिखे गये अक्षरों पर दादाजी ने वासक्षेप डालकर शिष्य से पढ़वाने का आदेश दिया ।
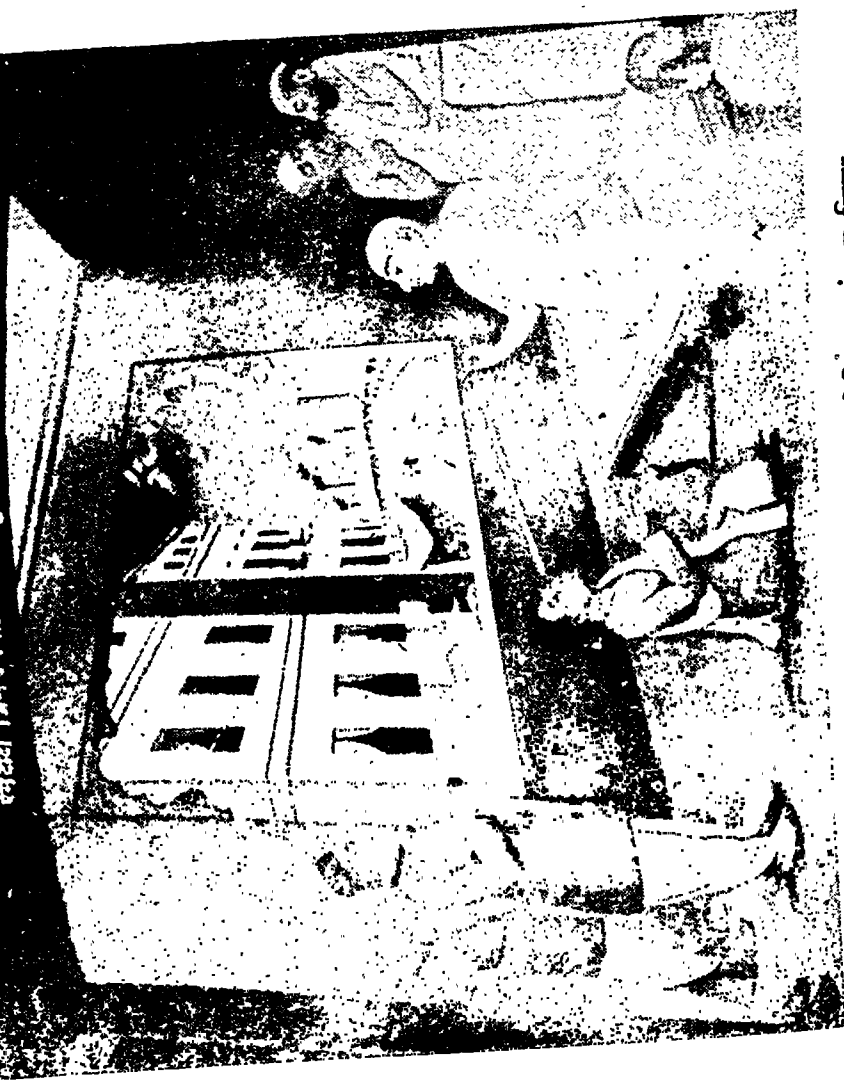
गुरुदेव ने सूरत के श्रेष्ठिपुत्र के नेत्रों में ज्योति का संचार किया

पकन्नी पडिक्कमणे अजमेरे । जगमग बिजली आवै ॥
पात्र तले थं [illegible] गुरुने । हर्ष थेई अ[illegible]पाबे ॥

बिजली को पात्र के नीचे स्तम्भित करते हुए दादा श्री जिनदत्तसूरिजी

कामनाएं पूरी करने वाले हैं, ऐसे वे युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरिजी जयशाली हों।

यह सुनकर नागदेव परम प्रसन्न हुआ एवं अपनी शंका का समुचित समाधान प्राप्त कर आचार्यश्री के चरण-कमलों में वन्दना करते हुए उनका परम भक्त हो गया। इस प्रकार देव-प्रदत्त 'युगप्रधान' पद की इस अलौकिक घटना से 'युगप्रधान' के रूप में आचार्यदेव की सर्वत्र प्रसिद्धि होगई।

युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरिजी ने अपने जीवन में कई चमत्कार पूर्ण कार्य किये। एक समय अजमेर नगर में सायङ्काल के समय जब पाक्षिक प्रतिक्रमण हो रहा था, तब अकस्मात् ही विद्युत् (बिजली) का ऐसा भयंकर प्रकोप हुआ कि सभी भयभीत हो, घबराने लगे। यहां तक कि जिनालय एवं उपाश्रय भी विद्युत्-शक्ति से भस्म होने जा रहे थे कि आपने सबकी रक्षा करते हुए अपने पात्र के नीचे बिजली को स्तम्भित कर दिया एवं सबको भय से मुक्त किया।

सूरत में एक समय ऐसी ही विचित्र घटना घटी कि वहां के सुप्रसिद्ध श्रेष्ठिवर्य्य के पुत्र की नेत्रज्योति किसी कारण से नष्ट हो गई। वह अपने पुत्र की इस पीड़ा से दुःखी हो, मुक्ति पाने के हेतु निरन्तर प्रयास करता रहा, किन्तु कहीं सफलता नहीं मिली। अन्त में आचार्यदेव की अलौकिक प्रतिभा एवं प्रभाव को सुनकर वह उनकी शरण में गया। आपने तत्काल ही श्रेष्ठिपुत्र के नेत्रों में ज्योति का संचार कर दृष्टिदान दिया।

इसी प्रकार भरुच नगर में भी एकबार वहां के सुल्तान के पुत्र को सर्प ने डस लिया था, जिससे वह अचेतन होगया एवं कई

प्रयत्न करने पर भी उसको चेतना नहीं आई और उसकी मृत्यु होगई। मृत्यु के उपरान्त जब कुमार के शव को अग्निसंस्कार के लिये स्मशान ले जा रहे थे, उस समय वहीं सूरत के उसी सेठ के द्वारा आचार्यश्री की चमत्कारपूर्ण महिमा बतलाने पर उस शव को आचार्य देव की शरण में लेगये। आपने अपनी तपोमयी शक्ति से विष का विनाशकर सुलतान के पुत्र में प्राणों का संचार कर दिया।

ऐसी एक नहीं अनेकों घटनाएँ हैं, जिनसे आचार्यदेव की चमत्कारमयी प्रतिभा के दर्शन होते हैं।

युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरिजी ने अपने विहार के द्वारा जहां धार्मिक सद्भावना के प्रचार के साथ जिनशासन की अभूतपूर्व सेवा की, वहां आपने संसार के कल्याण के लिये प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत भाषा में कई ग्रन्थों की रचनाओं के साथ ही गूढ़ विषयों के अर्थ को सरलता पूर्वक स्पष्ट करने की दृष्टि से टीकाएं भी कीं। इसी प्रकार आप जितने प्रभावशील रहे, आपके द्वारा रचित ग्रन्थ एवं विशेषतः स्तुतिपरक रचनाएं भी उतनी ही प्रभावशील मानी जाती हैं। सहस्रों श्रद्धालु आज भी जिनका पाठकर अपनी आपत्तियों से मुक्ति पाते हैं एवं निर्भयता के साथ सुखपूर्वक अपना जीवन यापन करते हैं।

इस प्रकार जीवन पर्यन्त अपने योग बल, तपोबल एवं ज्ञान-बल से जिनशासन की उन्नति करते हुए पूर्व में ही अपना आयु-शेष ज्ञातकर अनशन-आराधना द्वारा आपने अजमेर में संवत् १२११ आषाढ़ शु० ११ के दिन इस नश्वर शरीर का परित्याग किया एवं स्वर्गवासी हुए।

नगर सुल्तान ... । दिया ... दान ॥
अभक्ष्य राज । सेवे श्री जिन दत्त महान ॥

दादाजी ने भरुचनगर में मृत्यु प्राप्त सुलतान के पुत्र को जीवनदान दिया ।

आपके अग्नि संस्कार के स्थान (वीसल समुद्र के तट) पर (अजमेर में) सुन्दर स्तूप बना हुआ है जिसकी प्रतिष्ठा संवत् १२२१ में मणिधारीदादा श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने की थी। इसके पश्चात् तो भारत के विविध प्रान्तों, नगरों एवं ग्रामों में आपकी प्रतिमाएं तथा चरण स्थापित किये गये एवं आज भी किये जारहे हैं।

श्रद्धालुजन अपूर्वश्रद्धा के साथ आचार्य श्री की संस्थापित इन प्रतिमाओं एवं चरणपादुकाओं की पूजा-आराधना कर अपने आचार्यदेव युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरिजी के चरणों में अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।

आपके उस समय के पहनने के वस्त्र, चद्दर तथा चोलपट्टा आज भी जैसलमेर में सुरक्षित हैं एवं अजमेर स्थित मदार पहाड़ की उच्चतम चोटी पर अधिकांश समय तक जप तप ध्यानादि में लीन होने के कारण उस स्थान पर अभी भी उनकी स्मृति के रूप में छत्री, शाल एवं जल की टंकीं विद्यमान है।

मणिधारी दादा श्री जिनचन्द्रसूरिजी

युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरिजी के पट्टालंकार मणिधारो श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने अपने असाधारण व्यक्तित्व एवं लोकोत्तर प्रभाव के कारण अल्पायु में ही जो प्रसिद्धि प्राप्त की वह सर्वविदित है । ये महान् प्रतिभाशाली एवं तत्ववेत्ता विद्वान् आचार्य थे।

इनका जन्म संवत् ११९७ भाद्रपद शुक्ल ८ के दिन जैसलमेर के निकट, विक्रमपुर नामक ग्राम में हुआ । इनके पिता साह रासलजी एवं माता देल्हण देवो थी । जन्मसे ही ये अधिक सुन्दर थे, जिसके कारण सहज ही सर्वसाधारण के प्रिय होगये ।

संयोगवश विक्रमपुर में युगप्रधान आचार्य श्री जिनदत्तसूरिजी का चातुर्मास हुआ। चातुर्मास को अवधि में सूरिजी के अमृतमय उपदेशों को सुनने के लिये जहां नगरवासी भारी संख्या में जाते थे, वहां देल्हण देवी भी प्रतिदिन प्रवचनामृत का पान करती हुई अपने जीवन को धन्य मानती थी। देल्हण देवी के साथ उसके पुत्र (हमारे चरित्रनायक) भी रहते थे। एक दिन देल्हणदेवी के इस बालक के अन्तर्हित शुभलक्षणों को देखकर आचार्य देव ने अपने ज्ञान बल से यह जानलिया कि "यह प्रतिभासम्पन्न बालक सर्वथा मेरे पट्ट के योग्य है । निस्सन्देह इसका प्रभाव लोकोत्तर होगा एवं निकट भविष्य में ही यह गच्छनायक का महत्त्वपूर्ण पद प्राप्त करेगा।" बालक संस्कारवान् तो था ही,

उसका मन इतनी कम आयु के होते हुए भी विरक्ति की ओर अग्रसर होने लगा। अन्ततः विक्रमपुर से विहार करने के पश्चात् अजमेर में सं० १२०३ फाल्गुन शुक्ल नवमी के दिन श्री पार्श्वनाथ विधि चैत्य में प्रतिभासम्पन्न इस बालक को आचार्यजी ने दीक्षित किया। दीक्षा के समय इस बालक की आयु मात्र ६ वर्ष की थी।

दीक्षित होने के पश्चात् दो वर्ष की अवधि में ही किये गये विद्याध्ययन से आपकी प्रतिभा चमक उठी। फलतः आपकी असाधारण मेधा, प्रभावशाली मुद्रा एवं आकर्षक व्यक्तित्व से प्रभावित होकर दीक्षित होने के दो वर्ष पश्चात् ही संवत् १२०५ में वैशाख शुक्ल ६ के दिन विक्रमपुर के श्री महावीर जिनालय में युग प्रधान आचार्य श्री जिनदत्तसूरिजी ने आपको आचार्य पद प्रदान कर श्री जिनचन्द्रसूरिजी के नाम से प्रसिद्ध किया। आचार्य पद का यह महा महोत्सव इनके पिता साह रासलजी ने ही भव्यसमारोह के साथ किया था।

युगप्रधान गुरुदेव दादा श्रीजिनदत्तसूरिजी ने अपने विनयी शिष्य श्री जिनचन्द्रसूरि को शास्त्रज्ञान आदि के साथ ही गच्छ-संचालन आदि की भी कई शिक्षाएँ दी थीं। आपने इनको विशेष रूप से यह भी कहा था कि "योगिनीपुर-दिल्ली में कभी मत जाना।" क्योंकि आचार्यदेव यह जानते थे कि वहां जाने पर श्री जिनचन्द्रसूरि का मृत्युयोग है।

संवत् १२११ में आषाढ़ शुक्ल ११ को अजमेर में जब श्री जिनदत्तसूरिजी का स्वर्गवास होगया तब अल्पायु में ही सारे गच्छ का भार आपके ऊपर आगया एवं अपने गुरुदेव के समान आप भी कुशलतापूर्वक सफलता के साथ इस गुरुतर भार को वहन करने में लग गये।

गच्छभार को वहन करते हुए आपने विविधग्रामों एवं नगरों में विहार कर धर्मप्रचार करना प्रारम्भ किया। फलस्वरूप आपके उपदेशों से प्रभावित होकर कई श्रावकों एवं श्राविकाओं ने दीक्षाएँ ग्रहण कीं।

आचार्य देव धर्मशास्त्रों के अतिरिक्त ज्योतिष शास्त्र के भी पारंगत विद्वान् थे। इसके साथ ही आपने कई चमत्कारपूर्ण सिद्धियाँ भी प्राप्त की थीं।

एक बार संघ के साथ विहार कर जब दिल्ली की ओर पधार रहे थे तो मार्ग में वोरसिदान ग्राम के समीप संघ ने अपना पड़ाव डाला। उसी समय संघ को यह मालूम हुआ कि कुछ लुटेरे उपद्रव करते हुए इधर ही आ रहे हैं। इस समाचार से सभी भयभीत हो घबराने लगे। इस प्रकार संघ को भयातुर देख कर सूरिजी ने कारण पूछा कि आप भयभीत क्यों हैं ? किस कारण से घबरा रहे हैं ? और जब आचार्यदेव को यह ज्ञात हुआ कि ये म्लेच्छोपद्रव से व्याकुल हैं, तो उन्होंने तत्काल ही कहा— "आप सब निश्चिन्त रहो, किसी का कुछ भी अहित होनेवाला नहीं है। प्रभु श्री जिनदत्तसूरिजी सब की रक्षा करेंगे।"

इसके पश्चात् आपने मन्त्रध्यान कर अपने दण्ड से संघ के चारों ओर कोट के आकार की रेखा खींचदी। इसका प्रभाव यह हुआ कि संघ के पास से जाते हुए उन म्लेच्छों (लुटेरों) को संघ ने भली प्रकार देखा, किन्तु उनकी दृष्टि संघ पर तनिक भी न पड़ी। इस प्रकार मार्ग में म्लेच्छोपद्रव के भय से संघ मुक्त होकर आचार्य श्री के साथ विहार करता हुआ क्रमशः दिल्ली के समीप पहुंच गया।

श्री जिनचंद्रसूरिजीने मार्गमें संघके चहुंओर मंत्रित लकिर खिंचदेकर संघकी रक्षा की
जिससे डाकुओं के नजरमें संघ दिख नहि सका और वे चलेगये
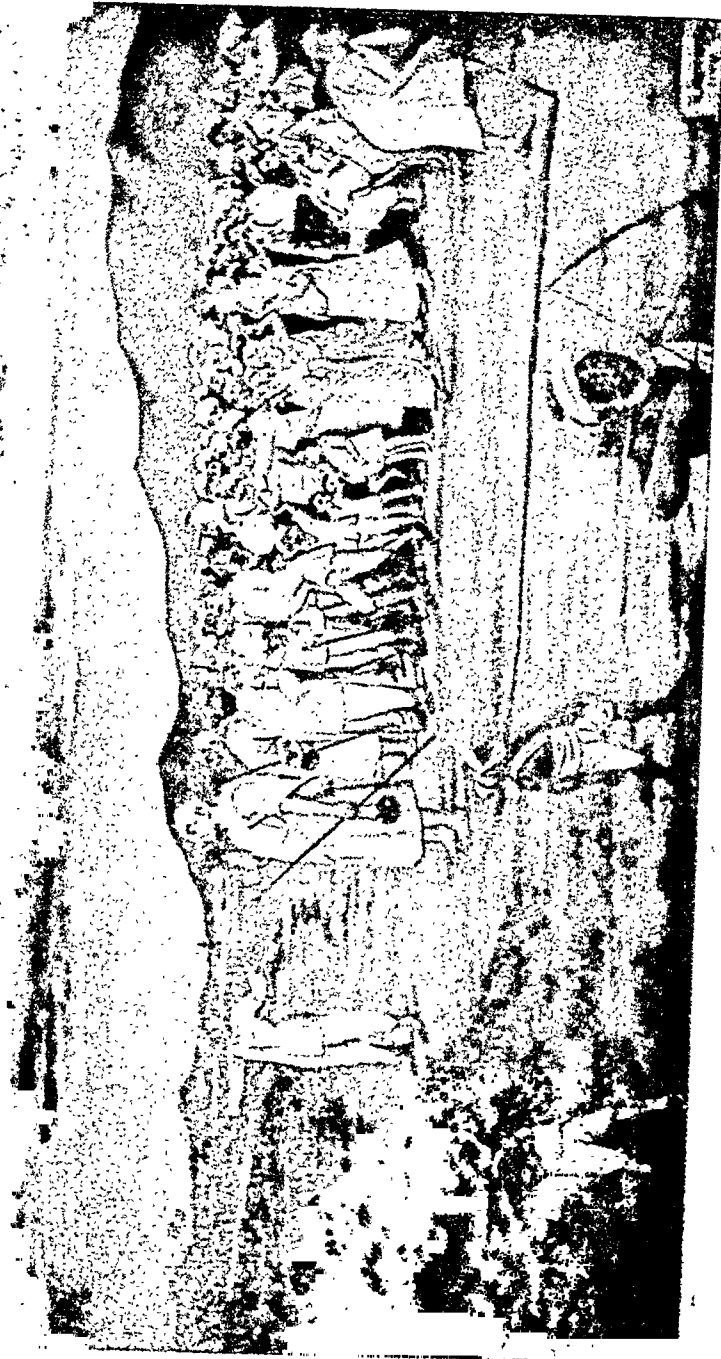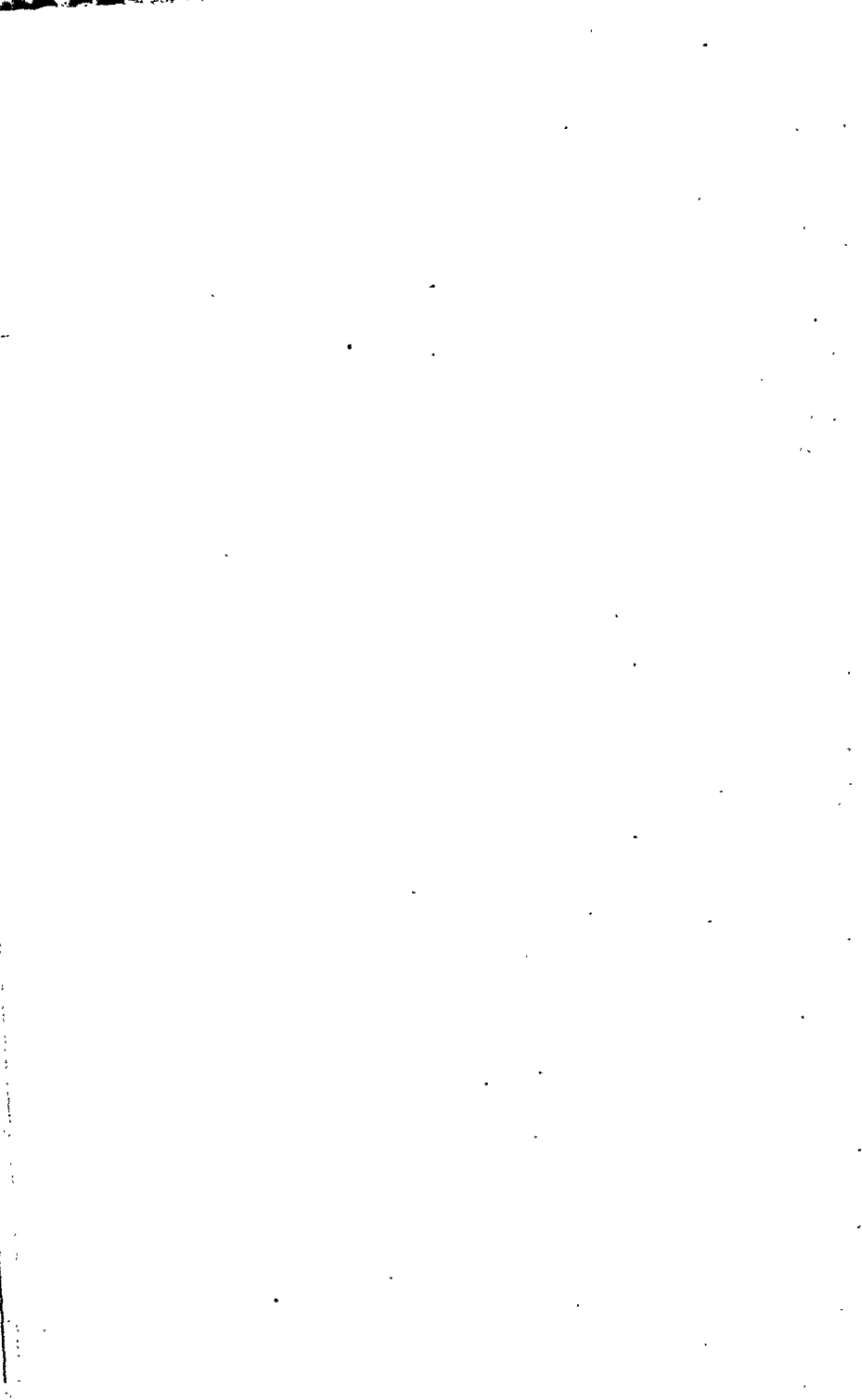
आचार्य श्री जिनचन्द्रसूरिजी के दिल्ली पधारने की सूचना पाकर जब सुन्दर वेशभूषा में सुसज्जित होकर नगरवासी एवं सौभाग्यवती स्त्रियां मंगलगान गाती हुई आचार्यजी के दर्शनार्थ जाने लगीं तो उन्हें जाते देख कर राजप्रासाद में बैठे हुए महाराजा मदनपाल ने अपने अधिकारियों से पूछा कि नगर के ये विशिष्ट जन कहाँ जारहे हैं ? उन्होंने कहा—"राजन् ! ये लोग अपने गुरुदेव के स्वागतार्थ जारहे हैं। आज उनका हमारे नगर में पदार्पण हुआ है। गुरुदेव अल्पवय में होते हुए भी धर्म के प्रकाण्ड वेत्ता प्रभावशाली तथा सुन्दर आकृतिवाले हैं।" यह सुनकर महाराजा के मन में भी गुरुदेव के दर्शनों की उत्कण्ठा उत्पन्न हुई एवं वे सदलबल श्रावक श्राविकाओं से पूर्व ही आचार्यदेव के दर्शनार्थ पहुँच गये।

आचार्य श्री के द्वारा दिये गये धर्मोपदेश से प्रभावित होकर महाराजा मदनपाल ने उनसे नगर में पधारने की विनति की।

आचार्य श्री अपने गुरुदेव युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरिजी के दिये हुए उपदेश को स्मरण करते हुए दिल्ली नगर में प्रवेश न करने की दृष्टि से मौन रहे। उन्हें मौन देखकर पुनः महाराजा ने जब विशेष अनुरोध किया तो अन्त में आपने नगर में पदार्पण कर महाराजा मदनपाल की मनोकामना पूरी की। यद्यपि आचार्यश्री को अपने गुरुदेव की दिल्ली न जाने की आज्ञा का उल्लंघन करते हुए मानसिक पीड़ा का अनुभव होरहा था, तथापि भवितव्यता के कारण आपको दिल्ली नगर में पदार्पण करना ही पड़ा। वहां कुछ समय तक आपने अपने उपदेशों से भव्यजीवों का कल्याण करते हुए आयुशेष निकट जानकर सं० १२२३ भाद्रपद कृष्ण चतुर्दशी को चतुर्विध संघ से क्षमा याचना की एवं अनशन आराधना के पश्चात् आप स्वर्ग सिधार गये।

अन्तिम समय में आपने श्रावकों के समक्ष यह भविष्यवाणी की कि—"नगर से जितनी दूर मेरा संस्कार किया जायगा, नगर की बसावट उतनी ही दूर तक बढ़ती जायगी।"

इस सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि आचार्य श्री ने अपने स्वर्गवास के पूर्व ही संघ को बुला कर यह आदेश दिया था कि "मेरे विमान (रथी) को मध्य में कहीं विश्राम मत देना एवं सीधे नगर से बाहर उसी स्थान पर ले जाकर विश्राम देना, जहां दाहसंस्कार करना है।" शोकाकुल संघ ने इस आदेश को भूल कर मध्य में ही पूर्व प्रथानुसार विश्राम दे दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि तनिक विश्राम देने के पश्चात् जब विमान को उठाने लगे तो लाख प्रयत्न करने पर भी वह उस स्थान से लेशमात्र भी नहीं सरका। राजा मदनपाल को जब यह सूचना मिली तो उन्होंने हाथी के द्वारा विमान को उठवाने की व्यवस्था करवाई; किन्तु उसमें भी सफलता नहीं मिली। अन्त में गुरुदेव का ही चमत्कार समझ कर महाराजा ने उसी स्थान पर अग्नि संस्कार करने का राजकीय आदेश प्रदान किया।

इसके पश्चात् इस प्रकार की चमत्कार पूर्ण घटना के कारण गुरुदेव का अग्नि संस्कार उसी स्थान पर किया गया।

मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने इस प्रकार अपना मंगलमय ऐहिक जीवन यापन कर अपने समय में जिनशासन की उन्नति के साथ कई अलौकिक कार्य किये।

विशेषतः आपने चैत्यवासी पद्मचन्द्राचार्य जैसे वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध आचार्य को शास्त्रार्थ में परास्त कर दिल्लीश्वर महाराज मदनपाल को चमत्कृत करते हुए जो अभूत पूर्व कार्य
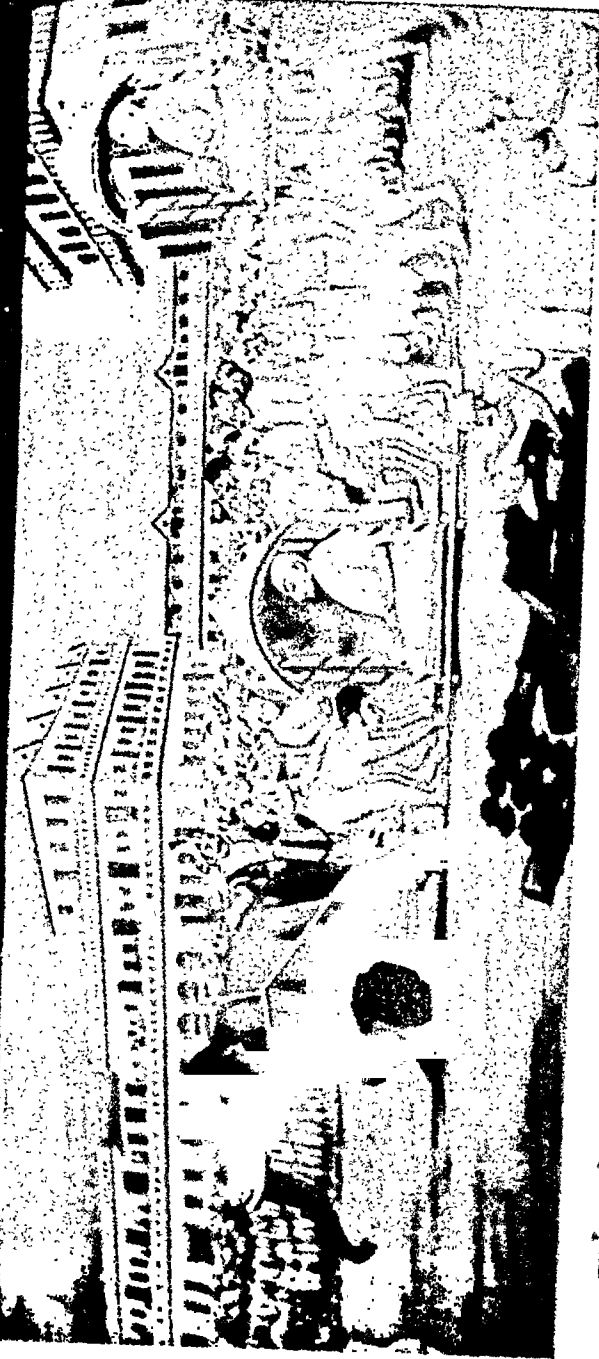
स्वर्गवास के पश्चात् गुरुदेव का विमान (रथी) विश्राम स्थान से हाथी द्वारा उठवाने पर भी नहीं

किये निस्सन्देह वे आपकी उत्कृष्ट साधना के परिचायक ही हैं। इसके अतिरिक्त आपने महत्तियाण (मन्त्रिदलीय) जाति की स्थापना कर महान् उपकार किया। आपके द्वारा संस्थापित इस जाति की परम्परा के कई व्यक्तियों ने पूर्व देश के तीर्थों का उद्धार कर शासन की महान् सेवाएं कीं।

आचार्य देव श्री जिनचन्द्रसूरिजी के ललाट में मणि थी, जिसके कारण ही 'मणिधारीजी' के नाम से आपकी प्रसिद्धि हुई। इस मणि के विषय में पट्टावली में यह उल्लेख मिलता है कि आपने अपने अन्त समय में श्रावकों से कह दिया था कि—अग्नि-संस्कार के समय मेरे शरीर के निकट दूध का पात्र रखना जिससे वह मणि निकल कर उसमें आजायगी; किन्तु गुरुवियोग की व्याकुलता से श्रावकगण ऐसा करना भूल गये एव भवितव्यतावश वह मणि किसी अन्य योगी के हाथ लग गई। कहा जाता है कि श्री जिनपतिसूरिजी ने उस योगी की स्तम्भित प्रतिमा प्रतिष्ठित-कर उससे वह मणि प्राप्त करली थी।

वस्तुतः मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी महान् प्रतिभाशाली एवं चमत्कारी आचार्य थे, इसमें सन्देह नहीं। केवल ६ वर्ष की अवस्था में दीक्षा ग्रहण कर ८ वर्ष की अल्पायु में आचार्य पद प्राप्त कर लेना कम विस्मय कारक नहीं है। ऐसे युग प्रधान मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी के प्रति हृदय से जितनी बार श्रद्धाञ्जलि अर्पित की जाय, थोड़ी ही होगी।

प्रगटप्रभावी दादा श्री जिनकुशलसूरिजी

महान् प्रभावशाली अद्वितीय विद्वान् एवं जिनशासन के सुप्रसिद्ध महापुरुष परम पितामह श्री जिनकुशलसूरिजी 'दादाजी' के नाम से विशेषतया प्रसिद्ध आचार्य माने जाते हैं।

आपका जन्म मरुस्थल प्रदेश के समियाणा (सिवाना) नामक ग्राम में छाजहड़ गोत्रीय मं० देवराज के पुत्र मन्त्रिराज श्री जेसल (जेल्हागर) के यहाँ संवत् १३३७ में हुआ था। आपकी माता का नाम जयन्तश्री एवं आपका जन्म नाम करमण था।

जब आपकी आयु १० वर्ष की थी, तब खरतरगच्छ के आचार्य श्री जिनप्रबोधसूरिजी के पट्टधर श्री जिनचन्द्रसूरिजी, जो गृहस्थ में आपके पितृव्य (काका) होते थे, समियाणा पधारे। समियाणा में उनके धार्मिक प्रवचनों को सुनकर आपके हृदय में वैराग्य का बीजारोपण हो गया एवं तत्काल ही संयमाराधन करने का निश्चय कर आपने अपनी माताजी से अनुमति लेने के पश्चात् सं० १३४७ में फाल्गुन शु० ८ के दिन शुभ मुहूर्त्त में दीक्षा ग्रहण करली एवं आपका नाम कुशलकीर्ति रखा गया।

दीक्षाग्रहण करने के पश्चात् तत्कालीन उपाध्याय श्री विवेकसुन्दरजी के सान्निध्य में रहकर आपने विद्याध्ययन करना प्रारम्भ किया एवं कुछ ही समय में आपने अद्भुत पाण्डित्य प्राप्त करलिया। इतना ही नहीं स्वपरादि समस्त शास्त्रों में पारंगत होकर आपने न्याय, व्याकरण, ज्योतिष आदि में भी असाधारण

प्रगट प्रभावा दादा श्री जिनकुशलसूरिजी महाराज

गति प्राप्त कर ली थी। फलस्वरूप इस प्रकार की आपकी प्रकाण्ड योग्यता को देखकर सं० १३७५ में आपको वाचनाचार्य के पद से विभूषित किया गया।

इसके पश्चात् जब आपके दीक्षागुरु आचार्य श्री जिनचन्द्रसूरिजी खण्डासराय में चातुर्मास यापन कर रहे थे उस समय उन्होंने अपना आयुशेष निकट जानकर स्वहस्त दीक्षित वाचनाचार्य श्री कुशलकीर्ति गणि को ही अपने पद के योग्यसमझा एवं इस आशय से संघ को भी आपने अवगत कर दिया। अन्त में उनके आदेशानुसार संवत् १३७७ में ज्येष्ठ कृष्णा ११ को शुभ लग्न में आपको सूरिपद से समलङ्कृत कर स्वगत आचार्यश्री के निर्देशानुरूप ही आपका श्री जिनकुशलसूरि नाम प्रसिद्ध किया गया।

सूरिपद महोत्सव के अवसर पर भव्य समारोह आयोजित किये गये थे, जिसमें विशेष रूप से सेठ तेजपाल ने इस प्रसंग पर मुक्तहस्त से अपने द्रव्य का सदुपयोग करते हुए महान् लाभ लिया था।

सूरिपद प्राप्त करने के पश्चात् आप दिल्लीवासी श्रीमाल ज्ञातीय सेठ रयपति के द्वारा निकाले गये संघ में सम्मिलित हुए एवं इस प्रसंग पर आपने मार्ग में कई स्थानों पर प्रतिष्ठाएँ आदि धार्मिक कार्य सम्पन्न किये। विशेषतः शत्रुञ्जय तीर्थ पर दस दिन तक भारी समारोह के साथ जिनप्रतिमाओं की प्रतिष्ठाएँ, नन्दी महोत्सव, नवनिर्मित जिनप्रासादों पर ध्वज-दण्डारोहण आदि कार्यकलापों के साथ कई कार्य आपके द्वारा सम्पन्न हुए। इसी प्रकार भीमपल्ली संघ की यात्रा में सम्मलित होकर आपने संघ को लाभान्वित किया एवं जिनशासन की उन्नति की।

इस समय तक दादा श्री जिनकुशलसूरिजी की ख्याति प्रख्याति चारों ओर फैल गई थी एवं सर्वत्र आपकी प्रभावोत्पादिनी जिन-वाणी से धर्म का व्यापक प्रचार हो रहा था, पुनरपि ऐसे समय में सिन्धु प्रदेश जैसा क्षेत्र मिथ्यात्व प्रवृत्तियों से अत्यधिक आक्रान्त होनें के कारण अधर्म क्षेत्र बनता जा रहा था। उस प्रदेश की ऐसी विषम स्थिति पर गम्भीरता पूर्वक विचार करते हुए आपने उसी ओर विहार करने का निश्चय किया। इधर सुयोग वश उच्चा नगर तथा देवराजपुर के श्रावकों ने भी आकर आपश्री से उस ओर पधारने की विनति की। अतएव श्रावकों की इस विनति को स्वीकार कर आप वहां पधारे। आपके पदार्पण से उस क्षेत्र की जनता में अलौकिक उत्साह एवं धर्म के प्रति श्रद्धा जागृत होने लगी। यहां तक कि आपकी अमृतमयी वाणी को सुनने के लिए हिन्दु तथा मुसलमान सभी वर्ण एवं जाति के व्यक्ति श्रद्धा के साथ सम्मिलित होकर लाभान्वित होते थे। अन्ततः परिणाम यह हुआ कि सिन्धु प्रदेश में व्याप्त मिथ्यात्व प्रवृत्तियां निर्मूल होगईं एवं अन्य पवित्र क्षेत्रों की भाँति यहां भी उत्साह पूर्वक धार्मिक क्रियाएं होने लगीं। वे सभी लोग, जो एक दूसरे को शत्रु समझते थे, परस्पर मिल कर भ्रातृभाव से रहने लगे एवं धर्म के प्रति उत्तरोत्तर श्रद्धा बढ़ने लगी। यही नहीं आपने अपने औपदेशिक प्रभाव से पचास हजार नवीन श्रावक बनाकर समाज की संख्या में वृद्धि की।

इस प्रकार अनेकानेक स्थानों पर विशेषतः सिन्धु प्रदेश जैसे स्थानों पर जहां अधार्मिकता एवं मिथ्यात्व से परिपूर्ण दूषित प्रवृत्तियाँ पनप रही थीं, अपने पवित्र पदार्पण एवं उपदेशामृत की रस वर्षा से पूर्ण धार्मिकता का संस्थापन एवं प्रचार-प्रसार करते हुए आप संवत् १३८९ में देवराजपुर पधारे। इस वर्ष का

चातुर्मास आपने यहीं किया। चातुर्मास के पश्चात् आपने अपने ज्ञान बल से स्वर्गवास समीप जानकर वहीं ठहरने का निश्चय किया। अन्ततः एक दिन अपने निर्वाण की घड़ी को सामने आती हुई देखकर आपने तरुणप्रभाचार्य एवं लब्धिनिधानोपाध्याय को आदेश दिया कि "मेरे पट्ट के योग्य पन्द्रह वर्षीय मेरा शिष्य पद्ममूर्ति है, उसी को गच्छनायक का पद समर्पित करना।"

इसी प्रकार को अन्य गच्छसंचालन सम्बन्धी कई शिक्षाएँ देकर आप फाल्गुन कृष्ण अमावास्या को दोप्रहर रात्रि व्यतीत होने के पश्चात् पंच परमेष्ठि के ध्यान में पूर्ण लीन होगये एवं नश्वर देह का परित्याग कर आपने स्वर्ग की ओर प्रयाण किया।

दादाजी श्री जिनकुशलसूरिजी अपनी विद्यमानता में जिस प्रकार अपने पाण्डित्य पूर्ण कौशल का प्रभावशाली परिचय देते हुए संघ का एवं भव्यजीवों का कल्याण करते रहे, उसी प्रकार स्वर्गवास के पश्चात् आज भी वे अपने भक्तों की मनोकामना की पूर्ति करने में कल्पतरु के समान हैं। जो श्रद्धालु तन्मयतापूर्वक आपका ध्यान कर आपत्ति निवारणार्थ प्रार्थना करता है, आप प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उसको दर्शन देकर उसकी आपत्ति दूर करते हैं। ऐसी एक नहीं अनेकों घटनाएँ आपके सम्बन्ध में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देती हैं, एवं श्रद्धालु भक्तों द्वारा सुनने को मिलता है कि किस प्रकार आप आज भी अपने भक्तों की सुधबुध लेकर उनका कल्याण करते हैं।

एक बार कविवर समयसुन्दरजी जब सिन्ध प्रान्त में विचरण करते हुए संघ सहित पंच नदी पार करने के लिये नौका में बैठे तो उस समय अंधियारी रात, भयंकर वर्षा एवं आंधी के कारण नौका की स्थिति डूबने जैसी होगई।

कविवर ने उसी समय अपने एक मात्र इष्ट दादाजी का ध्यान किया । फलस्वरूप तत्काल श्री जिनकुशलसूरिजी की देवात्मा ने प्रगट होकर नौका का वह संकट दूर कर दिया। ऐसी कई घटनाएँ हैं—जिनका उल्लेख यहां करना सम्भव नहीं है।

आचार्यश्री के अलौकिक प्रभाव का ज्वलन्त उदाहरण इससे बढ़ कर और क्या हो सकता है कि आपकी सहस्रों स्तुतियां, स्तोत्र, अष्टक, पद, छन्द, मन्दिर, मूर्त्तियां, चरण-पादुकाएं आदि यत्र तत्र सर्वत्र उपलब्ध हैं। इतने अधिक स्तवन एवं स्मारक किसी भी अन्य आचार्य के उपलब्ध नहीं होते, जितने आपके हैं। निस्सन्देह यह आपके प्रत्यक्ष चमत्कार का ही फल है कि भारत के कई ग्रामों, नगरों, तीर्थों, एवं मन्दिरों आदि में आपके स्मारक के रूप में प्रतिमाएं तथा चरण प्रतिष्ठित हैं।

ऐसे युग प्रभावक प्रभाव-प्रताप पुञ्ज सन्त शिरोमणि दादा श्री जिनकुशलसूरिजी के प्रति अपनी सनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर हम अपने को महान् भाग्यशाली मानते हैं।

अकबरप्रतिबोधक

युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरिजी

खरतरगच्छीय आचार्यों की परम्परा में युग प्रधान श्री जिनचन्द्रसूरिजी का अपने विशिष्ट गुणों के कारण महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपका जन्म भूतपूर्व जोधपुर राज्य के खेतसर ग्राम में संवत् १५६५ चैत्र कृष्ण १२ के दिन हुआ था। आपके पिता का नाम श्रीवन्तशाह तथा माता का नाम श्रियादेवी था। जब आपका जन्म हुआ तब आपके पिताजी ने समारोह पूर्वक जन्मोत्सव मनाते हुए आपका नाम सुलतान कुमार रखा।

बाल्यकाल से ही सुलतान कुमार (चरित्र नायक) प्रभावोत्पादिनी अपनी प्रतिभा का परिचय देते हुए शिक्षा के साथ ही अन्य कलाओं में भी रुचि लेने लगा, जिसके फलस्वरूप उसने अल्पवय में ही सन्तोष जनक विद्वत्ता प्राप्त करली।

संयोगवश वि० सं० १६०४ में खरतरगच्छ नायक श्री जिनमाणिक्यसूरिजी अपने शिष्य समुदाय सहित खेतसर पधारे, जिनके प्रवचनामृत का पान करने के लिए सुलतानकुमार भी गया। आचार्य श्री की वाणी का प्रभाव सुलतान कुमार के निर्मल मानस पर इस प्रकार पड़ा कि उसने संसार की असारता भली भांति समझकर चारित्र धर्म पालन के हेतु दीक्षा लेने का दृढ़ निश्चय कर लिया एवं इसके लिये अपनी माताजी से अनुमति लेकर तत्काल ही वि० सं० १६०४ में ही आचार्य प्रवर श्री जिनमाणिक्यसूरिजी से दीक्षा ग्रहण करली। गुरुदेव ने दीक्षा देने के पश्चात

आपका नाम 'सुमतिधीर' स्थापित किया। दीक्षा के समय हमारे चरित्रनायक की अवस्था मात्र ९ वर्ष की थी, किन्तु थोड़े ही समय में आपने ग्यारह अङ्गादि का तथा अन्य शास्त्रों का अध्ययन कर आशातीत विद्वत्ता प्राप्त कर ली। इतना ही नहीं आप शास्त्र वाद एवं व्याख्यान कलादि में भी निपुण होकर अपने गुरु के साथ विभिन्न प्रदेशों में विचरण करने लगे।

कालानुक्रम से सं० १६१२ आषाढ़ शु० ५ को श्री जिनमाणिक्यसूरिजी का स्वर्गवास होने के कारण सर्वसम्मति से आप ही को आचार्य पदासीन किया गया। वि० सं० १६१२ भाद्रपद शुक्ल ८ गुरुवार को आचार्य पद प्राप्ति के पश्चात् आप श्री जिनचन्द्रसूरिजी के नाम से प्रसिद्ध हुए। जिस दिन आपको आचार्य पद की प्राप्ति हुई, उसी रात्रि को आपके गुरु श्री जिनमाणिक्यसूरिजी ने स्वप्न में प्रत्यक्ष दर्शन दिये थे।

गच्छ का महान् उत्तरदायित्त्व सम्हालते हुए जब आचार्यश्री ने अपने ही गच्छ में शिथिलाचार देखा तो यह निश्चय किया कि ऐसी विषम परिस्थिति में सर्व प्रथम गच्छनायक को ही क्रियोद्धार करना अत्यन्त आवश्यक है इस विचार के अनुसार आपने संवत् १६१४ चैत्र कृ० ७ को क्रियोद्धार कर नवीनआदर्श की स्थापना की तथा गच्छ की सुव्यवस्था के साथ ही साधुओं के लिए उत्कृष्ट चारित्र पालन के कई कठोर नियम बनाये, जिनका पालन करना प्रत्येक साधु के लिये अनिवार्य था। इस प्रकार गच्छ में त्यागपूर्ण आदर्श की स्थापना के पश्चात् आचार्य श्री ने अपने कार्य कलापों द्वारा कई श्रावकों को जैनदर्शन का सद्बोध दिया।

आपकी विद्वत्ता एवं जैनधर्म की तत्त्वज्ञता से प्राय: उस समय के सभी आचार्य प्रभावित रहते थे। एक बार सं० १६१७ में जब

आपका चातुर्मास पाटन में था, उस समय तपागच्छीय श्री धर्मसागरजी ने नवाङ्गीवृत्तिकार श्री अभयदेवसूरिजी के सम्बन्ध में अपना मन्तव्य प्रगट करते हुए यह कहा कि श्री अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छ के नहीं हैं। चरित्रनायक श्री जिनचन्द्रसूरिजी द्वारा खरतरगच्छ के आचार्य के नाते उक्त मन्तव्य का निराकरण करने के हेतु पाटन स्थित समस्त गच्छों के आचार्यों एवं साधुओं को एक स्थान पर आमन्त्रित कर इन सबके समक्ष शास्त्रार्थ करने के लिए धर्मसागरजी को बुलाया गया, किन्तु वे नहीं आये। अन्तत: एकत्रित समस्त महानुभावों ने ४१ प्राचीन ग्रन्थों के प्रामाणिक आधार पर यह निर्णय दिया कि नवाङ्गीवृत्तिकार श्री अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छ के ही हैं। साथ ही समस्त आचार्यो एवं मुनियों ने धर्मसागरजी को उत्सूत्र भाषी सिद्ध किया और वे जैनसंघ से वहिष्कृत भी कर दिये गये। यही नहीं तत्कालीन तपागच्छ के आचार्य श्री विजयदानसूरिजी ने तो इनकी लिखी हुई पुस्तकों को जल शरण करवाते हुए इन्हें अपने गच्छ से पृथक् भी कर दिया। इस प्रकार आपके प्रखर पाण्डित्य एवं उत्कृष्ट चारित्र्य के कारण आपका प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति पर पड़े विना नहीं रहता था। आपकी विद्वत्ता तथा त्यागमयी यह कीर्ति सुरभि चारों ओर फैलती हुई संयोगवश वादशाह अकवर के दरबार तक भी पहुंच गई।

सम्राट् अकवर अपने समय के उच्चकोटि के धर्म जिज्ञासु एवं धर्म प्रेमी थे। अपनी इसी धर्म जिज्ञासा की पूर्ति के हेतु वे प्राय: प्रत्येक धर्म के विद्वानों तथा आचार्यों से सम्पर्क साधते रहते थे। एक समय जब उन्होंने विद्वानों से हमारे चरित्र नायक आचार्य श्री जिनचन्द्रसूरिजी की प्रशंसा सुनी तो जैन धर्म का विशेषज्ञान प्राप्त करने की दृष्टि से उनके हृदय में आचार्य श्री

के दर्शन करने की उत्कट अभिलाषा हुई। अतः इसकी पूर्ति के लिये उन्होंने आचार्यप्रवर की सेवा में इस आशय का विनतिपत्र प्रेषित किया कि "कृपया आप लाहौर पधार कर अपने सद्‌दुबोधन द्वारा हमें अनुगृहीत करें।" आचार्यश्री ने सम्राट् की विनति को स्वीकार करते हुए जैन धर्म एवं उसके सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार के हेतु पारमार्थिक दृष्टि से विहार कर सं० १६४८ में फाल्गुन शुक्ल १२ को शुभ योग में लाहौर नगर में प्रवेश किया। नगर प्रवेश के पूर्व आचार्य श्री के शुभागमन का सन्देश लेकर जो व्यक्ति लाहौर गया था उसको मन्त्रीश्वर श्री कर्मचन्द्र ने सुवर्ण रसना (जिह्वा) एवं कर-कंकण आदि बहुमूल्य वस्तुओं का पुरस्कार देकर सम्मानित किया।

नगर में प्रवेश करते ही असंख्य नर-नारियों एवं मन्त्रीश्वर श्री कर्मचन्द्र के साथ सम्राट् ने सूरिजी का हार्दिक अभिनन्दन किया। आचार्य श्री ने जब अपना सदुपदेश प्रारम्भ किया तो सम्राट् अकबर के हृदय में अपार प्रसन्नता हुई एवं नित्यप्रति के सदुपदेशों से प्रभावित होने के फलस्वरूप उनकी आचार्य श्री पर अपार श्रद्धा एवं जैन दर्शन के प्रति आदरभावना उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। यहां तक कि एक समय सम्राट् के पुत्र सलीम के मूल नक्षत्र में कन्या उत्पन्न हुई। मूल नक्षत्र में जन्म होने से ज्योतिषियों ने कहा कि इस कन्या का जन्म पिता के लिये अनिष्टकारक है। अतः इसका मुख भी न देखकर परित्याग कर देना चाहिये। ऐसी स्थिति में सम्राट् ने उक्त दोष के निवारणार्थ अन्य कुछ उपाय न करते हुए मन्त्रीश्वर श्री कर्मचन्द्र से परामर्श कर जैनदर्शन के अनुसार भारी समारोह पूर्वक चैत्र शु० १५ को श्री सुपार्श्वनाथजी के मन्दिर में सोने चांदी के कलशों से
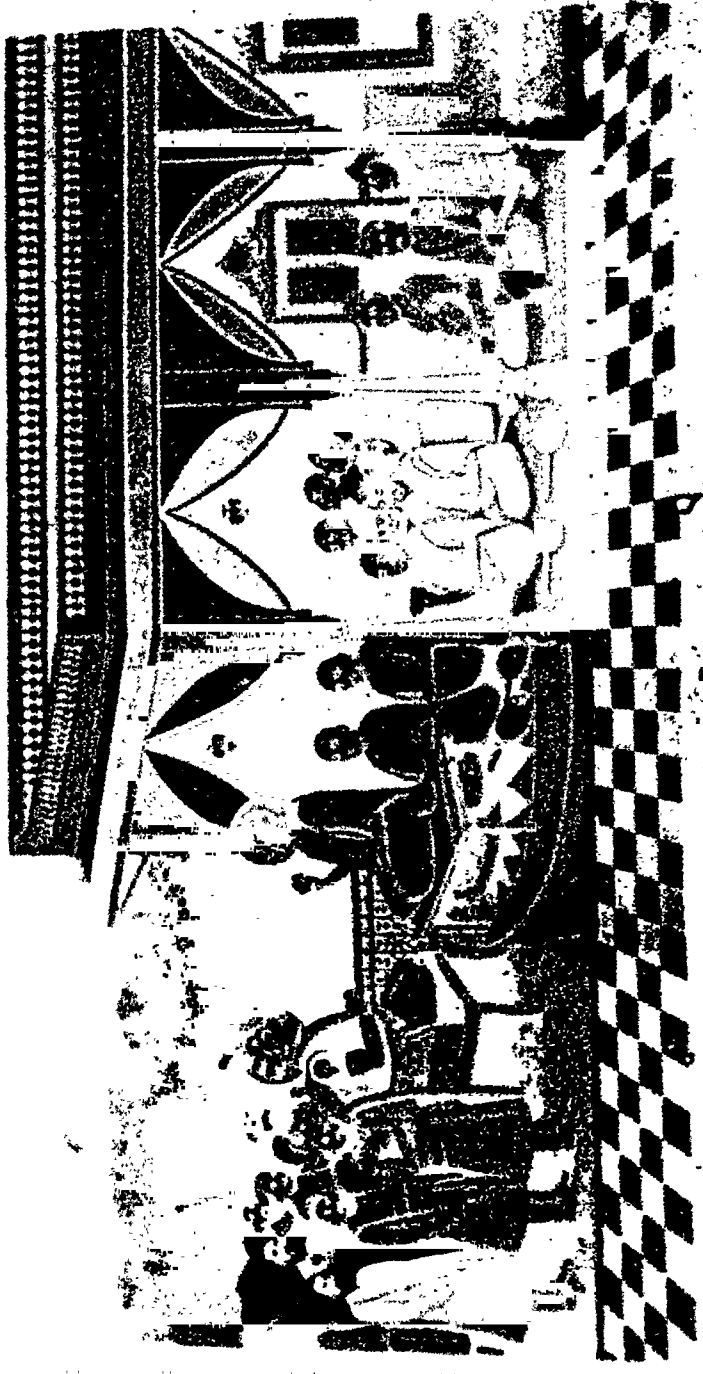
आचार्यश्री से सदुपदेश (प्रतिबोध) प्राप्त करते हुए सम्राट् अकबर एवं उनके सभासद

अष्टोत्तरी स्नात्र करवाया जिसमें एक लाख रुपये व्यय हुए। इसप्रकार सम्राट् अकबर जैन धर्म एवं उसके सिद्धान्तों के प्रति अटूट श्रद्धा करते थे। इसका एकमात्र कारण आचार्य श्री जिनचन्द्रसूरिजी ही हैं, जिनके प्रतिबोध से सम्राट की भावना इस सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त हुई। सम्राट अकबर भी अपनी इस सद्भावना-जागृति का श्रेय आचार्यश्री को ही देते थे। वे आपको "बड़े गुरु" के नाम से सम्बोधित करते थे। अपने इन्हीं 'बड़े गुरु' की वाणी से प्रभावित होकर बादशाह ने कई तीर्थ क्षेत्रों की रक्षा के, जीवहिंसा न करने के तथा जैनधर्म की क्रियाओं में व्यवधान न पहुँचाने के आदेश-पत्र (फरमान) निकाले, जिनकी प्रतिलिपियां आज भी प्राचीन भण्डारों में देखी जासकती हैं।

एक समय जब हमारे चरित्रनायक श्री जिनचन्द्रसूरिजी लाहौर में विराजते थे, उस समय मन्त्रीश्वर श्री कर्मचन्द्र ने यह जानकर कि नौरंगखान नामक किसी मुसलमान अधिकारी ने द्वारिका के जैन मन्दिरों को नष्ट कर दिये हैं, सूरिजी ने सम्राट् के समक्ष शत्रुञ्जय आदि तीर्थों एवं जैनमन्दिरों का माहात्म्य बतलाया तथा उनकी उचित व्यवस्था के लिये आदेश दिया तो सम्राट् ने आचार्य श्री की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए समस्त तीर्थों की रक्षा के लिये एक फरमान निकलवाकर समस्त जैन-तीर्थ मन्त्रीश्वर के आधीन कर दिये।

इसी प्रकार बादशाह ने अहमदाबाद के तत्कालीन सूबेदार अजमखान को शत्रुंजय, गिरनार आदि तीर्थों की रक्षा का विशेष आदेश देकर ऐसा फरमान दिया जिससे महातीर्थ शत्रुंजय म्लेच्छों के उपद्रवों से सुरक्षित रहा। इसके अतिरिक्त सूरिजी की

अमृतमयी वाणी एवं अहिंसात्मक उपदेशों से प्रभावित होकर प्रतिवर्ष आषाढ़ शु० ६ से पूर्णिमा पर्यन्त १२ सूबों में समस्त जीवों को अभयदान देने के लिये १२ शाही फरमान और निकाले, जिनसे जीवहिंसा न होसके। इन फरमानों में से मुलतान के सूबे का फरमानपत्र खो जाने से (ता० ३१ खुरदाद इलाही सन् ४६) में उसकी प्रतिलिपि का एक फरमान बादशाह ने फिरसे निकाला, जिसकी प्रतिलिपि इस चरित्र के साथ दीगई है। बादशाह के द्वारा इस प्रकार के फरमानों का अन्य राजाओं पर भी प्रभाव पड़ा और उन्होंने भी बादशाह का अनुकरण करते हुए अपने अपने राज्यों में सुविधानुसार १० दिन से लेकर २ मास तक के लिये समस्त जीवों को अभयदान देने की उद्घोषणा करादी। इस प्रकार सूरिजी के उपदेशों से असंख्य जीवों को जीवनदान मिला।

अपने काश्मीर प्रवास के समय जब बादशाह ने सूरिजी से निवेदन किया कि आप लाहौर में ही सुखशान्ति से विराजें, किन्तु हमारे साथ अपने कतिपय शिष्यों को अवश्य भेजने की कृपा करें, जिससे धर्मचर्चा के साथ ही दयाधर्म का प्रचार होता रहे। इस प्रार्थना का मन्त्रीश्वर श्री कर्मचन्द्र ने समर्थन किया एवं उन्होंने भी सूरिजी से प्रार्थना स्वीकार करने की विनति की। फलस्वरूप दयाधर्म के प्रचार का महान् लाभ एवं जैनधर्म की प्रभावना को ध्यान में रखते हुए सूरिजी ने बादशाह के साथ वाचक मानसिंहजी तथा श्री हर्षविशालजी आदि शिष्यों को भेजने की अनुमति प्रदान करदी। इस प्रकार बादशाह के साथ काश्मीर प्रवास के समय वाचकजी तथा अन्य मुनियों के सदुपदेशों से मार्ग में कई स्थानों पर जलचर जीवों के अभयदान के आदेश प्रसारित हुए एवं दयाधर्म का प्रबल प्रचार हुआ।
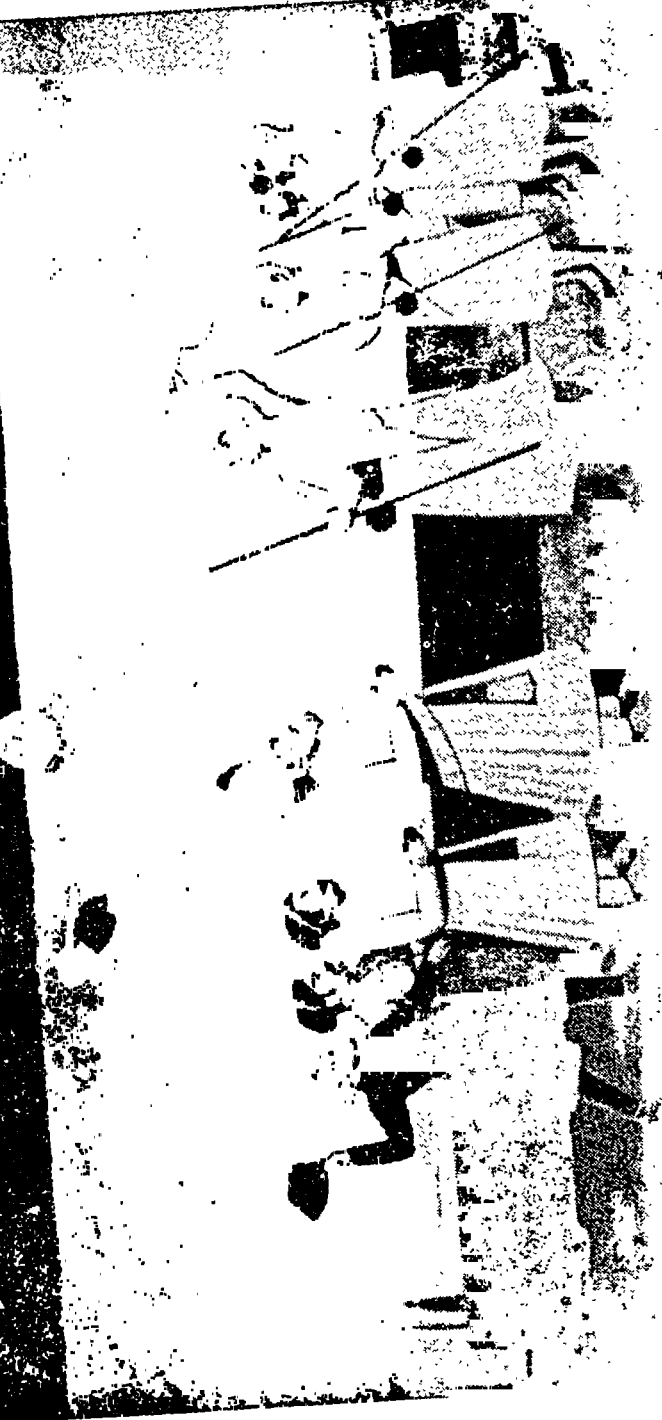
आचार्यश्री के रजोहरण से काजीजी की टोपी पुनः यथा स्थान आगई

गुरुदेव के कथनानुसार भूगर्भ में से बकरी के तीन बच्चे निकले

एक वार वादशाह अकवर ने युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरिजी का चरित्र सुना तो उनके मनमें अत्यन्त हर्ष हुआ एवं अपने 'वड़ेगुरु' चरित्रनायक श्री जिनचन्द्रसूरिजी को भी भारी समारोह के साथ 'युगप्रधान' के पद से विभूषित कर अपने को धन्य माना।

आचार्य श्री जितने क्रियानिष्ठ तथा विद्वान् थे, उतने ही अपने तपोवल एवं योगवल से चमत्कारी थे। एक समय सूरिजी जब शाही दरवार में प्रवेश करने पधार रहे थे, उस समय मार्ग के मध्य किसी नाले में वैसे ही परीक्षणार्थ एक वकरी रखकर ऊपर ऐसी स्थिति वनादी, जिससे वह दिखाई न दे। सूरिजी चलते २ भूगर्भस्थ वकरी के स्वरूप को योगवल से जानकर सहसा रुक गये, तो वादशाह ने आगे पधारने की प्रार्थना की। सूरिजी ने कहा—"मार्ग में भूगर्भ के अन्दर जीव हैं एवं उनका उल्लंघन कर आगे पांव रखना हमारे लिये निषिद्ध है।" वादशाह ने पूछा—"कितने जीव हैं?" सूरिजी ने उत्तर दिया—'तीन'! वादशाह ने सोचा इसके अन्दर तो एक ही वकरी रखी थी, तीन जीव कैसे हो सकते हैं? परन्तु जब अन्दर देखा तो तीन ही जीव निकले। वकरी सगर्भा थी एवं अन्दर उसके दो वच्चे उत्पन्न हो गये थे। इस प्रकार की घटना से वादशाह आश्चर्यान्वित हुए विना नहीं रहे।

इसी प्रकार एक समय वादशाह को सूरिजी का परम भक्त देखकर किसी ईर्ष्यालु काजी ने वादशाह के सामने सूरिजी को अप्रतिष्ठित करने की दुर्भावना से मन्त्र वल के द्वारा अपनी टोपी आसमान की ओर उड़ाई। सूरिजी ने भी योग वल से काजी के अभिप्राय को समझ कर जैनशासन की अवहेलना न हो, इसलिए

अपने रजोहरण को मन्त्र शक्ति से टोपी को लाने के लिये छोड़ा। सूरिजी द्वारा छोड़े गये रजोहरण ने तत्काल काजीजी की टोपी का पीछा किया और उसको ताड़ित करते हुए पुनः लाकर यथा-स्थान काजीजी के मस्तक पर रखदी। सूरिजी के इस अद्भुत चमत्कार से काजीजी चकित होकर रह गये।

एक घटना और इसी प्रकार की कही जाती है कि एक समय सूरिजी के एक शिष्य ने किसी मौलवी द्वारा तिथि पूछने पर भूल से अमावस के बदले पूर्णिमा बतलादी। इस पर मौलवी ने उपहास करते हुए चारों ओर यह प्रचार कर दिया कि "आज अमावास्या है, परन्तु जैनसाधु के कथनानुसार आसमान में पूर्णिमा का चन्द्रमा प्रकाशित होगा।" सूरिजी के उन शिष्य को भी अपनी भूल स्मरण हो आई एवं उन्होंने आचार्यश्री को सारा वृत्तान्त कह दिया।

मौलवी द्वारा किये गये इस प्रचार की सूचना बादशाह के दर-बार तक पहुँच गई थी। ऐसी स्थिति में जैनशासन की प्रतिष्ठा को ध्यान में रखते हुए किसी श्रावक के यहाँ से स्वर्णथाल मंगवाकर उसे मन्त्र बल से आसमान में उड़ादी, जिससे वह थाल पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान ही सर्वत्र प्रकाशित होने लगी। बादशाह ने उस प्रकाश की जांच बारह कोस तक करवाई, किन्तु सर्वत्र पूर्णिमा का ही प्रकाश था। यह सुनकर बादशाह अत्यन्त ही चकित एवं प्रसन्न हुए।

ऐसी एक नहीं अनेकों चमत्कारपूर्ण घटनाएं हैं, जिनसे आचार्यश्री के तपोबल, मन्त्रबल, ज्ञानबल तथा योगबल का परिचय प्राप्त होता है। इसी प्रसंग में एकबार संवत् १६५२ माघ

आचार्यश्री ने स्वर्ण थाल आसमान में उड़ाकर अमावस्या के अन्धकार को पूर्णिमा के प्रकाश में परिवर्तित कर दिया ।

पंच नदी के पांचों पीरोंको गुरुदेव ने अपने वश में कर लिया ।

शु० १२ रविवार को शुभ मुहूर्त में बादशाह के आग्रह से तथा संघ की उन्नति के हेतु सूरिजी ने पंचनदी के अधिष्ठायक देवों को भी साधना कर उनको वश में किया था।

ऐसे कई चमत्कार पूर्ण कार्यों के साथ आचार्य श्री ने अनेकों स्थानों पर जिनालयों की तथा देव, गुरु की प्रतिमाओं एवं चरणों की प्रतिष्ठाएं करते हुए शासन सेवा की।

बादशाह अकबर के देहावसान के पश्चात् यद्यपि उनके शाहजादा सलीम (नुरुद्दीन जहांगीर) सूरिजी तथा जैनसाधुओं का आदर करते थे, तथापि मद्यपान एवं क्रोधी स्वभाव के होने के कारण एक बार संवत् १६६८ में किसी शिथिलाचारी वेशधारी दर्शनी को अनाचार वृत्ति का सेवन करते देखकर उसको राज्य-निर्वासित कर दिया और यह आदेश भी प्रसारित कर दिया कि जितने भी जहां कहीं भी दर्शनी हों उन्हें गृहस्थी बना दिये जांय अथवा उन्हें मेरे राज्य से बाहर निकाल दिए जांय। इस शाही फरमान से दर्शनी लोग त्रस्त होगये।

बादशाह सलीम के इस शाही फरमान की जानकारी जब सूरिजी को प्राप्त हुई, तब आप उक्त संकट के निवारणार्थ एवं जैनशासन की रक्षा करने के लिये ७० वर्ष की वृद्धावस्था में भी शीघ्र विहार करके आगरा पधारे। इधर जब बादशाह को आचार्य श्री के पधारने के समाचार मिले तो उन्होंने राज्याज्ञा भङ्ग न हो, इसलिये सूरिजी को राजमार्ग से न पधार कर लोकों-तर मार्ग से प्रवेश करने को कहलाया। बादशाह की इस राज्याज्ञा को, जिनशासन की प्रभावना के हेतु मान देते हुए सूरिजी ने अपनी ऊनी कामली को यमुना नदी में बिछादी और मन्त्र शक्ति द्वारा उसीके ऊपर आसीन हो, यमुना नदी पार की एवं इस प्रकार

स्थलमार्ग से न पधार कर आचार्यश्री लोकोत्तर मार्ग (जलमार्ग) से राजप्रासाद में पधारे। ऐसी अद्भुत शक्ति एवं चमत्कार से बादशाह का चमत्कृत एवं चकित होना स्वाभाविक था।

अपने पूज्य युगप्रधान गुरु के इस प्रकार दर्शन कर बादशाह को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। आचार्य श्री ने बादशाह के द्वारा निकाले गये शाही फरमान की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए उनसे कहा कि—"बादशाह, एक व्यक्ति के दोष से सारा समाज दोषी नहीं होता। अतः तुमने जो साधुविहार बन्द करते हुए आदेश प्रसारित किया है, उसे निरस्त कर जैनशासन की अभिवृद्धि में अपना सहयोग दो।"

सूरिजी के प्रति श्रद्धा होने के कारण बादशाह उनका आदेश कैसे टाल सकते थे? उन्होंने तत्काल दूसरा फरमान निकालकर जैनसाधुओं पर लगाये गये सभी प्रतिबन्ध हटादिये।
इसप्रकार आपके प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व के कारण एक ओर जहां बाहशाह की बुद्धि में परिवर्तन हुआ, वहां दूसरी ओर जिनशासन की भी भारी उन्नति हुई।

आचार्यश्रो जीवन पर्यन्त ऐसे कई सत्कार्यों को करते हुए जब बीलाड़ा नगर में चातुर्मासिक-आवास में विराजमान थे, तब ज्ञानोपयोग से अपना आयु शेष जानकर शिष्यों तथा श्रावक-श्राविकाओं को सदुद्बोध प्रदान करते हुए उन्होंने कहा—"यह मेरा पौद्गलिक देह अब विसर्जित होने वाला है, अतः तुम जिनशासन की उन्नति करने के साथ साथ आत्मोन्नति में भी सदा लगे रहना। गच्छका भार "जिनसिंहसूरि" वहन करेंगे, तुम सब सर्वदा उनकी आज्ञा का पालन करना।"

इस प्रकार सबको समुचित शिक्षा एवं आदेश देकर आचार्यश्री ने शुद्धमन से चतुर्विध संघ तथा चौरासीलक्ष जीवयोनि को क्षमत क्षामणा करते हुए चार प्रहर का अनशन पालन किया एवं उत्कृष्ट धर्मध्यान में लीन होकर अपने पौद्गलिक देह को विसर्जित करते हुए आश्विनकृष्णा २ के दिन स्वर्गधाम सिधारे।

संघ ने शोकसन्तप्त हो. आपका अग्निसंस्कार किया। अग्निसंस्कार के कारण वह पुद्गलपुञ्ज तो सबके देखते देखते भस्म होगया, किन्तु सूरिजी के अतिशय प्रताप से आपकी मुखवस्त्रिका (मुंहपत्ती) नहीं जल पाई; अस्तु।

आचार्यश्री जिनचन्द्रसूरिजी वस्तुतः महान् तपस्वी एवं प्रभावशाली थे। अकबर जैसे बादशाह को प्रतिबोध देकर कितने भव्यजीवों का आपने उपकार किया, यह अवर्णनीय है? ऐसे जिनशासन के महान् प्रभावक तथा बादशाह अकबर को प्रतिबोध देकर प्राणियों का कल्याण करने वाले अकबर प्रति-बोधक युग प्रधान श्री जिनचन्द्रसूरिजी के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना प्रत्येक मानव का परम धर्म एवं कर्तव्य है।